वर्ष ३

# ओ३म् भक्ति ओ३म्

संख्या ८

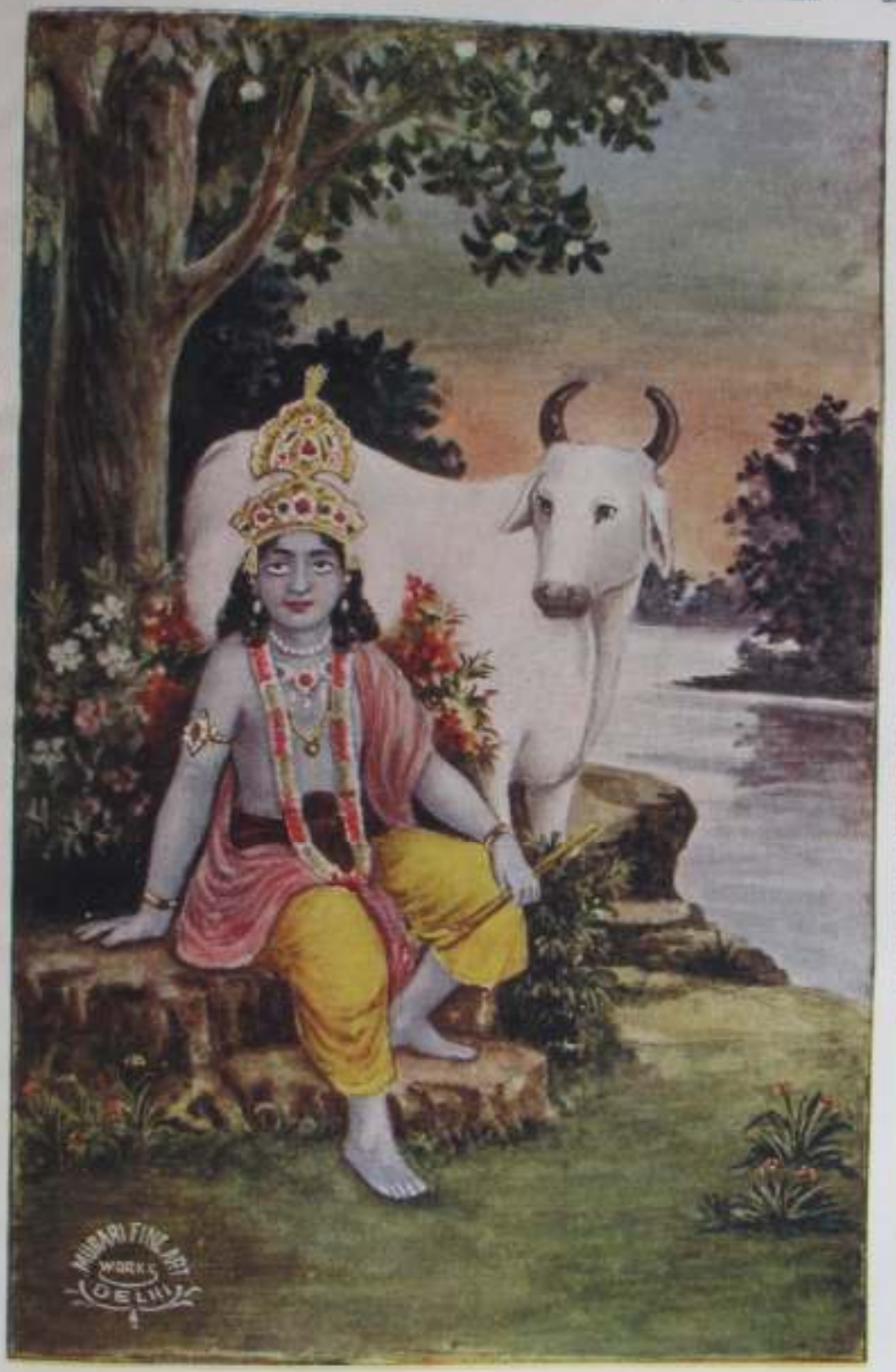




अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्॥

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥

वार्षिक चन्दा २)

सम्पादक—
म० कृष्णानन्द, भूमानन्द
वैशाख, १९८६

इस अङ्क का मूल्य ।)

# भक्ति के नियम

१. भगवान् की भक्ति का प्रचार करना, गो[illegible] और उसके लिए गोचर भूमि छुड़वाना, [illegible]ाग बनवाना, मनुष्य मात्र के लिए शिक्षा का [illegible] करना. वैदिक अनुभूत औषधियों का प्रचार [illegible], ग्रामों में परस्पर के झगड़े और वैमनस्य मिटा [illegible] शान्ति व प्रेम बढ़ाना, सब संस्थाओं में [illegible]क्ति और धर्म का भाव जाग्रत करना, राजा [illegible]जा सब ही का हित चिन्तन करना।

२. यह पत्र प्रतिमास की पूर्णिमा को प्रका-[illegible]शा करेगा।

[illegible] अग्रिम वार्षिक चन्दा सर्व साधारण से २) होगा

४. जो महानुभाव २५) रुपया देंगे वह पत्रके [illegible] और ५) देने वाले सहायक होंगे।

[illegible]. बाहर का कोई भी व्यापारिक विज्ञापन नहीं लिया जायगा।

६. लेखोंको प्रकाशित करना, करना, न घटाना, व बढ़ाना सर्वथा सम्पादक के अधिकार में होगा।

७. लेख सम्बन्धी पत्र व्यवहार सम्पादक के नामसे और व प्रबन्ध सम्बन्धी पत्र व्यवहार मैनेजर भक्ति के नाम से होना चाहिए।

८. जिन ग्राहकों के पास जिस मास की "भक्ति" न पहुंचे, उनको स्थानीय पोस्ट आफिस में पूछ कर उस मास की अमावस्या से पूर्व कार्यालय में सूचना भेजनी चाहिये। स्थानीय पोस्ट आफिस में बिना पड़ताल किये अथवा अमावस्या के बाद सूचना आने पर "भक्ति" नहीं भेजी जायगी।

९. पत्रोत्तर के लिये जवाबी, कार्ड भेजना चाहिये।

# विषय सूची


| [illegible]य | लेखक | पृष्ठ | विषय | लेखक | पृष्ठ |
|---|---|---|---|---|---|
| [illegible]वद्वचन | | २९९ | जी गोस्वामी | | ३१९ |
| [illegible]चैतन्य महाप्रभु | | ३०१ | ९. हरिजन मरते समय भी आनन्दित रह सकते हैं [ ले० वैद्य अमृतलाल सुन्दर जी पढियार | | ३२१ |
| [illegible]चित्र लीला ( कविता ) [ले० श्री [illegible]राम जी वैश्य | | ३०६ | १०. पावन प्रतिमा (कविता) [ले० श्रीमती सुमित्रा देवी | | ३२४ |
| [illegible]वद्भक्ति [ले० श्री भोले बाबाजी [illegible]नूपशहर | | ३०७ | ११. हिन्दी कवियों की भगवद्भक्ति [ले० श्रीब्रह्म शास्त्री | | ३२५ |
| [illegible]ोर मैं [श्री० प्रभुदत्तजी ब्रह्मचारी झूसी | | ३१५ | १२ प्रेमा भक्ति [ले० श्री० अनन्तराम जी वकील कसूर | | ३२७ |
| [illegible]भिलाषा (कविता) ले० श्री० मदन [illegible]ाल जी सिहल | | ३१६ | १२. भजन | | ३२९ |
| [illegible]ोपदेश [ ले० श्रीभोलेबाबा अनूपशहर | | ३१८ | | | |
| [illegible]गराधन से मनुष्य जन्म की [illegible]लता [ले० श्री आचार्य मदन मोहन | | | | | |



मुद्रक तथा प्रकाशक भूमानन्द ब्रह्मचारी "भक्ति प्रेस" आश्रम, रेवाड़ी।

# भक्ति के संरक्षक

| | |
|---|---|
| भक्त नन्दकिशोर जी चर्खी दादरी | १११) |
| ले० क० सरदार रघुबीरसिंह जी सांधोवालिया राजा सांसी, अमृतसर | १११) |
| ला० नूनकरणदास जी अग्रवाल भिवानी । | १०१) |
| राव बहादुर, कप्तान राव बलबीर सिंह जी ओ. बी. ई. रामपुरा | ५१) |
| सेठ अर्जुनदास जी भटिण्डा | ५१) |
| राव श्रीराम जी रईस नांगल | २५) |
| म० शोभाराम जी डूंगरवास | ,, |
| राव निहालसिंह जी सूबेदार पाल्हावास | ,, |
| बाई लक्ष्मीदेवी भगनी राव अमरलालसिंह जी रईस नांगल | ,, |
| बा० स्वयम्बरदास जी बी० ए० इन्स्पेक्टर आफ स्कूल्ज पटना | ,, |
| श्रीमती रानी निहालकौर धर्मपत्नी कप्तान राव बहादुर बलबीरसिंह जी | ,, |
| सेठ बनवारी लाल जी लोहियाँ चावड़ी बाजार दिल्ली | ,, |
| बक्शी चाननशाह एम. ए. एल. एल. बी. इन्कम्टैक्स आफीसर जालंधर | ,, |
| पं० गोपीनाथ जी [बिहाली निवासी] मालिक फार्म काशीनाथ बरूमलगली परांवठा दिल्ली | ,, |
| श्रीमती खुशालदेवी धर्मपत्नी चौ० नवलसिंह जी कोसली । | ,, |
| सेठ शिम्भुदयाल जी बीकानेर | ,, |
| चौ० रामजीलाल जी धवाना, हांसी | ,, |
| चौ० चन्दनसिंह जी कप्तान दतिया राज्य | ,, |
| ठाकुर उमरावसिंह जी रईस नान्धा | ,, |
| ला० दुर्गाप्रसाद जी भार्गव कुतबपुर | ,, |
| राय बहादुर सरदार शोभासिंह जी आनरेरी मजिस्ट्रेट नई दिल्ली | ,, |
| लक्ष्मी देवी खोसला धर्मपत्नी ला० बद्रीनाथ जी बी. ए. भीनगर | ,, |
| ...ई बदामो देवी पुत्री ला० गनेशीलाल चर्खीदादरी | ,, |
| ...री भक्तार्णीदेवी धर्मपत्नी भक्त नन्दकिशोर जी चर्खीदादरी | ,, |
| ... गोदावरीदेवी भगनी ला० प्रभुदयाल जी ,, | ,, |
| ...तिदेवी धर्मपत्नी ला० गंगाप्रसाद जी दादरीवाले, साहबगंज | ,, |
| ...सेठ जी डालमियां चिड़ावा | २५) |
| ... ...र बलीराम जी भदराडा | ५१) |
| ...बोले साहिब सी० एस० ई० के० बी० ई० रेवेन्यू मेम्बर गवालियर | ५१) |
| ...बी० ए० एल० एल० बी० गुड़गावां | ५१) |
| ...मरिया आनरेरी मजिस्ट्रेट मियानाबाद | २५) |
|  | २५) |

| | |
|---|---|
| ऐल० जे० राव पंवार होम मेम्बर ग्वालियर स्टेट ,, | २५) |
| राय बहादुर सरदार बसाखासिंह जी नई दिल्ली | २५) |
| ला० रामकुंवार जी सीनियर सब जज जालंधर | २५) |
| सरदार भगतसिंह एडवोकेट जालंधर | २५) |
| पी० एल० कोल बैरिस्टर दिवान भूतपूर्व देवास स्टेट लाहोर | २५) |
| चौ० सुन्दरलाल नन्दलाल रईसान कमालिया जि० मिन्टगुमरी | २५) |
| सूबेदार जगरामसिंह जी कासनी | २५) |
| | २५) |

## सहायक

| | |
|---|---|
| चौ० हुकमसिंह जी निखरी | ११) |
| बा० वैकुण्ठनाथ जी दिल्ली | ११) |
| पं० जगन्नाथ जी रेवाड़ी | ११) |
| चौ० शिवप्रसाद सेक्रेटरी अहीर स्कूल रेवाड़ी | ५) |
| रामप्रसाद जी झाड़सा | ५) |
| चौ० रामजीलाल जी कन्स्टेबल नांगलोई | ५) |
| भक्त बनारसीदास जी दिल्ली | ५) |
| महाशय शादीराम जी मस्तापुर, रेवाड़ी। | ५) |
| श्रीमती सूरज देवी धर्मपत्नी चौ० जोरावरसिंह जी एडीशनल जज अलीगढ। | ५) |
| चौ० शिवनारायणसिंह जी कोतवाल, सीकर राजपूताना | ५) |
| श्रीमान पं० जयराम जी शर्मा 'सनातन' इलाहबाद बैंक देहली। | ५) |
| ला० देवकीनन्द जी फिरोजपुर | ५) |
| महन्त प्रकाशानन्द जी मन्दिर चरणदासियान कूचांसारान दिल्ली | ५) |
| मि० एल. के. मिसरा इंस्पेक्टर, पोस्ट आफिस जयपुर | ५) |
| राय बहादुर लखनारायण सिंह जी वाड, पटना | ५) |
| डाक्टर कवलकिशोर सिंह जी कलकत्ता | ५) |
| राय साहब बांकेबिहारीलाल जी बी० ए० तहसीलदार चिड़ावा | ५) |
| सेठ मेलाराम जी अग्रवाल भिवानी | ५) |
| ला० रामचन्द्र जी वैद्य ,, | ५) |
| राव धीसाराम जी गढ़ीबोलनी | ११) |
| बा० शिवरामसिंह जी ,, | ७) |
| जमादार दीपचन्द जी ,, | ५) |
| चौ० इन्द्रसिंह जी सिरहोल | १०) |
| ला० ओंकारमल जी कानपुर | ५) |

| | |
|---|---|
| चौ० गणपतसिंह जी यादव पटीकड़ा परगना नारनौल | ११) |
| चौ० मनोहरसिंह जी ,, पाल्हावास, रेवाड़ी | ११) |
| ला० छोटेलाल घासीराम जी आर्यन मर्चेण्ट चावड़ीबाजार, दिल्ली | ११) |
| चौ० दौलतराम जी पटवारी नाहरी, सूबा दिल्ली | ५) |
| भक्त हरीचन्द जी प्रेमहाउस, ,, | ,, |
| चौ० धर्मसिंह जी कालूवास, तहसील रेवाड़ी | ,, |
| पं० मथुराप्रसाद ग्राम जमालपुर पो० कासन, गुड़गावां | ५) |
| श्री० दिलीपसिंह जी, कैथल मंडी, करनाल | ५) |
| ला० सरदारीलाल जी क्लाथ मार्केट दिल्ली | ११) |
| चौ० मूलचन्दजी गुराबड़ा जि० गुड़गावां | ५) |
| बा० जगन्नाथ यादव सदर बाजार लखनऊ | ५) |
| ला० अमीचन्द नरसिंहदास भिवानी | ११) |
| सुमित्रादेवी ठिकाना ला० प्रेमशंकरजी पान का दरीबा जैपुर | ५) |
| माई गुलाबोदेवी दिल्ली | ५) |


# भक्ति

का

# भगवद्भक्तांक

पृष्ठ संख्या १०४ कई रंगीन तथा सादे चित्रों से सुशोभित मूल्य ॥=)

मंगाने वालों को शीघ्रता करनी चाहिये। थोड़ी ही प्रतियां शेष रह गई हैं। फिर पीछे पछताना पड़ेगा।

मैनेजर

भक्ति कार्यालय रेवाड़ी।

श्रीश्रीचैतन्य कीर्त्तन ।

REGD. No. L. 2077

जनता में भगवद्भक्ति भाव को जाग्रत करने वाली सचित्र मासिक पत्रिका।

वर्ष ३ } भगवद्भक्ति आश्रम रेवाड़ी, वैशाख पूर्णिमा सं० १९८६। { अङ्क ८

## भगवद्वचन।

इद ँ ह्यन्वोजसा सुत ँ राधानां पते। पिबा त्वाऽस्य गिर्वणः ॥ १ ॥

हे धन के स्वामिन्! स्तुतियों से प्रार्थना करने योग्य इन्द्र, बल से युक्त हुवे तुम इस परिश्रम से निकाले हुए सोम को शीघ्र पीवो ॥ १ ॥

आ तू न इन्द्र क्षुमन्तं चित्रं ग्राभ ँ सं गृभाय। महाहस्ति दक्षिणेन ॥ १ ॥

हे इन्द्र! बड़े २ हाथों वाला तू इसी समय हमें देने के लिये स्तुति के योग्य, नाना प्रकार के ग्रहण करने योग्य धन को दाहिने हाथ से अभिमुख होकर ग्रहण करो ॥ २ ॥

अभिप्र गोपतिं गिरेन्द्रमर्च यथा विदे। सुनु ँ सत्यस्य सत्पतिम् ॥ ३ ॥

गौवों के स्वामी, यज्ञ के पुत्र, यजमानों के पालक इन्द्र को स्तुति से पूर्ण रीति से पूजो ॥ ३ ॥

त्यमु वः सत्रासाहं विश्वासु गीर्ष्वायतम् । आ च्यावयस्यूतये ॥ ४ ॥

हे स्तोतः ! बहुतों का तिरस्कार करने वाले तुम्हारे सकल स्तोत्रों में फैले हुए उस इन्द्रको हमारी रक्षा के लिये अभिमुख करके भेजो ॥ ४ ॥

सदसस्पतिमद्भुतं प्रियमिन्द्रस्य काम्यम् । सनिं मेधामयासिषम् ॥ ५ ॥

बुद्धि को पाने के निमित्त आश्चर्य करने वाले इन्द्र के प्यारे चाहने योग्य धन के दाता सदसस्पति देवता को प्राप्त हुवा हूं ॥ ५ ॥

भद्रं भद्रं न आ भरेषमूर्जꣳ शतक्रतो । यदिन्द्र मृडयासि नः ॥ ६ ॥

हे परमेश्वर ! हमारे लिये अच्छे २ अन्न और रस को प्राप्त कराइये । हे बहुकर्मन् ! जिससे हमको सुखी करो ॥ ६ ॥

ईक्ष मन्तीरपस्युवः इन्द्रंजातमुपासते । वन्वानासः सुवीर्यम् ॥ ७ ॥

समझने वाली और चाहने वाली बुद्धि से सुन्दर पुरुषार्थ का सेवन करते हुवे पुरुष, हृदय में साक्षात हुवे परमेश्वर की उपासना करते हैं ॥ ७ ॥

नकि देवा इनीमसि नकयायोपयामसि । मन्त्रश्रुत्यं चरामसि ॥ ८ ॥

हम उपासक लोग हिंसा न करें, सब ओर से किसी को अज्ञानयुक्त न करें, और वेदोक्त कर्मों का अनुष्ठान करें ॥ ८ ॥

दोषो आगादृहदुगाय द्युमदुगामन्नाथर्वण । स्तुहि देवꣳ सवितारम् ॥ ९ ॥

बृहत्साम के गाने वाले, प्रकाश युक्त ज्ञान वाले, अथर्व वेद के ज्ञाता अज्ञान ! तू जब कि रात्रि आवे तब सर्वोत्पादक परमात्मा की स्तुति कर ॥ ९ ॥

एषो उषा अपूर्व्या व्युच्छति प्रिया दिवः । स्तुषे वामश्विना बृहत् ॥ १० ॥

यही नवीना प्यारी अरुणोदय की वेला द्युलोक से फैलती है इसलिये तुम बहुतायत से इन्द्र परमात्मा की स्तुति करो ॥ १० ॥

वात आवातु भेषजीꣳ शम्भु मयोभु नो हृदे । प्र न आयुꣳषितारिषत् ॥ ११ ॥

हे परमात्मन् ! हमारे हृदय के लिये रोग शमन कारक सुखदायक औषध को वायु बहावें और हमारी आयु को बढावें ॥ ११ ॥

# श्रीचैतन्य महाप्रभु ।

[पूर्व प्रकाशित से आगे]

न्यास ग्रहण के अनन्तर महाप्रभु श्रीकृष्ण कीर्तन करते हुये, प्रेम में विह्वल हो, अनेक लोगों को भगवद्भक्ति का दान देते हुये वृन्दावन की तरफ दौड़े । पीछे पीछे भक्तगण और नगर निवासी भी गये लेकिन उनके बराबर दौड़ने में असमर्थ हो खिन्न मन एक एक करके सभी नगर निवासी वापिस लौट आये। भक्त गण भी बहुत पीछे रह गये। रास्ते में महा प्रभु गायों को चराते हुये ग्वालों के मुंह से हरिनाम सुन कर उस वन को वृन्दावन के समीप की भूमि समझ ठहर गये और ग्वालों से वृन्दावन का मार्ग पूछने लगे। नित्यानन्द जी ने सुअवसर देख चुपके से ग्वालों को शान्तिपुर का मार्ग दिखाने का इशारा कर दिया। अब महाप्रभु शांतिपुर के मार्ग को वृन्दावन का मार्ग समझ कर उधर ही दौड़ छूटे। इस प्रकार भक्त गण बड़ी कठिनाई से उन्हे शांतिपुर में ला अद्वैताचार्य के घर टिकाया।

नवद्वीप में यह खबर पहुंचते ही, वहां के सब बाल वृद्ध नर नारी भक्तगण प्रभु के दर्शनार्थ शांतिपुर की ओर टूट चले। माता पुत्र का संन्यास वेष देख दुःखी हो रोने लगी। जननी को दुःखी देख महाप्रभु बोले, "माता ! उस समय आवेश में मेरा चित्त ठिकाने नहीं था इसीलिये मैं संन्यास लेने को अधीर हो घर से निकल गया। अब जैसी आपकी आज्ञा होगी वैसा ही करूंगा"। यह सुन कर भक्तों के आनन्द का पार नहीं रहा। वे सोचने लगे कि माता अपने पुत्र को घर से क्यों निकालेगी। लेकिन माता शचि कोई साधारण स्त्री नहीं थी। यह समय भी बड़ी निकट परीक्षा का समय था। एक तरफ माता का पुत्र प्रेम और दूसरी तरफ संन्यासी पुत्र के प्रति आदर्श माता का कर्तव्य ! माता बोली, "वत्स ! मुझे तो तुम्हारे मेरी आंखों के सामने रहने से ही विशेष आनन्द होगा, लेकिन इससे संसार में लोग तुम्हारी निन्दा करेंगे और संन्यासी होकर पुनः गृहस्थी होने से तुम पतित समझे जावोगे। इससे तुम्हारे कल्याण में बाधा पड़ेगी सो मैं कैसे सहन कर सकूंगी। इसलिये तुम यहां न रह कर नीलाचल (जगन्नाथ क्षेत्र) में रहो। वहां से आने जाने वाले यात्रियों से तुम्हारा कुशल समाचार भी मिलता रहेगा। लेकिन बड़े भ्राता की तरह निष्ठुर मत हो जाना। माता को भूलना नहीं" इतना कहते कहते माता की आखों में पानी भर आया। महाप्रभु बोले, "माता यह शरीर आपका पालन किया हुआ है। इसे आपका ही समझिये। आपके ऋण से मैं कभी

उच्चरण नहीं हो सकता"। इस तरह कुछ दिन शांतिपुर में निवास कर महाप्रभु ने सारे नगर को प्रेम में डुबा दिया और तदनन्तर माता की आज्ञा लेकर निताई, गदाधर आदि कुछ भक्तों को साथ ले नीलाचल की ओर चले। देवी विष्णुप्रिया उसी समय से वृद्ध सास की सेवा करती हुई स्वयं भी संन्यास धर्म का पालन करने लगी। पुत्र वधू की सेवा से माता का पुत्र वियोग जीवन कष्ट बहुत कुछ कम होगया।

रास्ते में महाप्रभु ने कितने ही जीवों को "हरिनाम कीर्तन" का आदेश दे उनका उद्धार किया और मार्ग के संकटों का जरा भी विचार न कर भूख, प्यास, नींद और थकावट की परवाह न करते हुये नीलाचल (जिसे आज कल पुरी कहते हैं) पहुंचे। वहां पहुंचते ही श्रीजगन्नाथ जी के दर्शन करने के लिये पहरेदारों के मना करते रहने पर भी सीधे मंदिर के भीतर चले गये। श्रीजगन्नाथ जी की मूर्ति को देख कर प्रेम विह्वलता से ज्योंही मूर्ति का आलिङ्गन करने लगे त्योंही मूर्छित हो गिर पड़े। महाप्रभु को मूर्ति का आलिङ्गन करने के लिये आगे बढ़ते देख मंदिर के सेवक उन्हें मारने को दौड़े लेकिन पुरी के राजा प्रताप रुद्र की सभा के प्रधान पंडित वासुदेवसार्व भौम भट्टाचार्य जो श्रीजगन्नाथ जी के पुजारी भी थे उस समय वहीं थे और इस नवीन आगन्तुक की अलौकिक लीला देख नौकरों द्वारा उठवा कर उन्हें अपने घर ले गये। पीछे से भक्तगण भी मंदिर के दरवाजे पर आ पहुंचे। वहां सब घटना सुनी और वहीं महाप्रभु के परम भक्त, वासुदेव सार्वभौम के बहनोई गोपीनाथ आचार्य से भेंट होगई। उनको साथ ले भक्तगण सार्वभौम के घर पहुंचे और वहां प्रभु को मूर्छित देख हरिनाम कीर्तन कर जगाने लगे। लगा तार कीर्तन से महाप्रभु को तीसरे पहर चेत हुआ और हुंकार कर उठ बैठे। पश्चात् गोपीनाथ द्वारा प्रभु का परिचय पा कर उनके पिता और मातामह का नाम सुन कर सार्वभौम बड़े प्रसन्न हुये। भट्टाचार्य जी के पिता और महाप्रभु के माता यह नीलाम्बर चक्रवर्ती एक ही समय में नवद्वीप रहा करते थे। एक दिन ईश्वर सम्बन्धी बातें करते समय चैतन्य देव ने सार्वभौम को समझाया कि केवल तर्क के लिये पढ़ी हुई वेदान्त विद्या ईश्वर प्राप्ति के लिये निरर्थक है। इसके लिये विश्वास और अहैतुकी भक्ति की आवश्यकता है। सार्व भौम ने कहा "चैतन्य! तुमने इस युवा अवस्था में इतनी जल्दी संन्यास लेकर अच्छा नहीं किया! खैर! अब तुम मुझ से वेदान्त श्रवण करो। जिससे तुम्हारे संन्यास धर्म की रक्षा हो"। यह कह कर उन्होंने उनको सात दिन तक वेदान्त श्रवण कराया। चैतन्य चुप चाप मूकवत् सुनते रहे। जब सार्वभौम ने देखा कि यह कुछ बोलता ही नहीं है तब उनसे पूछा, "कुछ समझ रहे हो?" यह सुन कर चैतन्य बोले, "मैं इन व्यास सूत्रों का अर्थ तो समझता हूं लेकिन आपकी व्याख्या ठीक नहीं जचती"। इस छोटी उम्र के संन्यासी के मुंह से ऐसे शब्द सुन कर सार्वभौम को कुछ रोष सा हुवा और बोले, "अच्छा तब तुम इसकी व्याख्या करो"। चैतन्य देव की व्याख्या सुन कर सार्वभौम दङ्ग हो गये और उनका सारा पाण्डित्याभिमान जाता रहा। हृदय में सात्विक प्रकाश हुवा। श्रद्धा का उदय हुवा। एक समय उन्होंने महाप्रभु से साधन का उपाय पूछा। जिसके उत्तर में महाप्रभु बोले:—

तृणादपि सुनीचेन तरोरिव सहिष्णुना।
अमानिना मानदेन कीर्त्तनीयः सदाहरिः॥

तृण की अपेक्षा भी अपने को अत्यन्त दीन समझ कर, वृक्ष की तरह सहन शील होकर, अभिमान से सर्वथा रहित होकर, सर्वदा हरि कीर्तन करना चाहिये। यही परम साधन है। सार्वभौम जैसे बड़े भारी पंडित को महाप्रभु की कृपा से श्रेकृष्ण भक्त हुआ देख कर और भी कितने ही बड़े बड़े पंडित उनकी शरण ले इस मार्ग के अनुगामी बन गये।

इस प्रकार होलिकोत्सव पर श्रीजगन्नाथजी की दोल यात्रा का दर्शन कर करीब दो महीने पुरी में ठहरने के बाद महाप्रभु दक्षिण की ओर तीर्थ यात्रा करने के लिये पैदल ही मार्ग में हरि कीर्तन करते हुये चले। रास्ते में जो भी पापी, पतित और विधर्मी नर नारी मिले उन सबको हरि नाम दे पावन करते गये। कूर्म्म तीर्थ पर वासुदेव नामक एक कुष्टी ब्राह्मण आकर श्रीगौराङ्ग के शरणागत हुआ। श्रीगौरांग देव ने उस पीछे संकोच से हटते हुये को बड़े प्रेम से जबरदस्ती आलिङ्गन करके रोग मुक्त कर भक्ति का उपदेश दिया। वहां से चलते चलते नृसिंह क्षेत्र होकर विद्यानगर या राजमहेन्द्री पहुंचे। यहां राजमन्त्री रामानन्द राय नामक एक परम भक्त से महाप्रभु की भेट हुई। इनसे भक्ति विषयक गूढ तत्वों की बातें कर महाप्रभु बड़े आनन्दित हुये। इस तरह दक्षिण और पश्चिम के तीर्थों में भ्रमण करते हुये, मार्गके पथिकों को अपने दर्शन और हरिनाम से पवित्र करते हुये दो वर्ष के अनन्तर महाप्रभु फिर नीलाचल वापिस लौट आये।

नीलाचल वापिस आने पर महाप्रभु को राजगुरु काशी मिश्र के मकान पर ठहराया गया। वहां सार्वभौम ने महाप्रभु के दर्शनार्थ आये हुये सब नीलाचल वासियों का परिचय कराया नित्यानंदजी ने महाप्रभु के पुनः सकुशल नीलाचल पहुंचने की खबर नवद्वीप भेज दी। वहां से अनेक भक्त शांतिपुर होते हुये अद्वैताचार्य को साथ ले नीलाचल पहुंचे और प्रभु के दर्शन कर नेत्रों को शीतल किया। इस समय पुरी के राजा प्रतापरुद्र भी महाप्रभु के दर्शन करने के लिये पुरी आये हुये थे। ये सार्वभौम से इनकी अद्भुत लीला पहिले ही सुन चुके थे। राज मंत्री रामानंदराय भी इसी अवसर पर प्रभु के सत्संग के लिये यहां आगये थे। सब ने मिल कर राजा को दर्शन देने के लिये प्रभु से अत्यन्त आग्रह किया लेकिन महाप्रभु ने यह प्रस्ताव स्वीकार नहीं किया और बोले, "संन्यासी के लिये राजा और स्त्री के दर्शनों की अपेक्षा विष भक्षण भी श्रेष्ठ है"। जब भक्तों ने बारम्बार विनय की तब महाप्रभु यह कर "आत्मा वै जायते पुत्रः" राज पुत्र को लाने की आज्ञा दी। राज पुत्र महाप्रभु के दर्शन कर प्रेम से विह्वल हो कीर्तन करता हुआ नृत्य करने लगा। महाप्रभु ने उसे शांत कर भक्ति का उपदेश दे विदा किया। राजा ने पुत्र को आलिङ्गन कर उस आनन्द का कुछ अंश भोग किया लेकिन इससे उसको सन्तोष नहीं हुआ। राजा की अत्यन्त शोचनीय दशा देख कर भक्तों ने रथ यात्रा के उत्सव पर महाप्रभु के दर्शन करने का उपाय बता उन्हें शान्त किया। श्रीजगन्नाथ जी की रथ यात्राके उत्सव पर महाप्रभु भक्तमण्डली सहित कीर्तन और नृत्य करते हुये चलते थे उस समय राजा उनकी

चरण सेवा का अवसर ताक रहा था। जब महाप्रभु नृत्य करते मूर्छित हो धड़ाम से गिरने लगे तब राजा ने उन्हें पकड़ लिया। राजा के स्पर्श होते ही महाप्रभु चमक उठे और बोले, "यह क्या हुवा, मेरा विषयी से स्पर्श हो गया"। लेकिन राजा अपने सेवकों के समक्ष किये गये इस अपमान से तनिक भी विचलित नहीं हुआ। फिर जब महाप्रभु मूर्छित पड़े थे तब पास जाकर चरण सेवा करते हुये राजा प्रताप रुद्र रासलीला के गोपी गीताके श्लोक सुनाने लगे जिसे सुनकर महाप्रभु इतने मग्न हो गये कि ये राजा है इस बात का उन्हें ध्यान भी नहीं आया। इस तरह राजा प्रतापरुद्र अपने को कृतार्थ मान आनन्द से गद्गद् होगये।

नदिया के भक्तगण चार महिने तक नीलाचल में प्रभु के साथ रह कर उनकी लीला का आनन्द भोग करते रहे। पश्चात् प्रभु के विदा करने पर बहुत से भक्त वापिस घर लौट आये।

इसके उपरान्त महाप्रभु ने नित्यानन्दजी आदि कई भक्तों को गौड़ देश में जाकर वहां जो भी मार्ग में मिले उसी को जबरदस्ती हरिनाम सुना कर श्री-कृष्ण प्रेमी बना उसका उद्धार करने की आज्ञा देकर विदा किया।

थोड़े दिन नीलाचल में रह कर महाप्रभु शचि माता और श्रीगंगा जी के दर्शन करके वृन्दावन जाने के उद्देश्य से नवद्वीप आये और वहां सार्व-भौम के भ्राता वाचस्पति के घर ठहरे। महाप्रभु ने वाचस्पति से कह दिया था कि उनके आने की बात किसी पर प्रकट न करे। लेकिन नवद्वीप में प्रभु छिप कर रह सकें यह कब संभव था? लोगों को पता लगते ही आस पास के सभी मनुष्य उनके दर्शन को दौड़े। गंगा के उस पार रहने वाले भी पूरे परिमाण में किश्तियां न मिलने से तैर तैर कर गंगा पार करके प्रभु के दर्शन करने आने लगे।

प्रभु वाचस्पति के घर आये शचिमाता और विष्णु प्रिया को भी यह खबर मिली लेकिन एकबार भी प्रभु को न देख सकी। वहां प्रभु कुलिया से होकर अपने दल सहित नवद्वीप आये और पूर्व परिचित स्थानों को देख पुलकायमान होगये। फिरते फिरते अपने घर के सामने भी आये। माता ने पुत्र को फिर एकबार जी भर कर देखा लेकिन विष्णु प्रिया के लिये संन्यास के बाद अपने पति के दर्शन करने का यह प्रथम अवसर ही था। इतने जन समूह के बीच कुलवधु कैसे पति के पास जाय लेकिन फिर ऐसा अवसर भी तो नहीं मिलना था। लोक लाज को एक कौने में रख झट कातर ध्वनि करती हुई चरणों में गिर पड़ी। प्रभु यह देख कर पीछे हटने लगे। उस समय सारा समाज उस स्थिती को देख क्रन्दन कर रहा था। विष्णु प्रिया बोली, "प्रभु! आपने त्रिजगत का उद्धार किया केवल दासी विष्णु प्रिया भवकूप में पड़ी है"। प्रभुने 'तुम विष्णु प्रिया हो अपना नाम सार्थक करो' यह कह कर उसे अपनी चरण पादुका (खड़ाऊं) दे दी। विष्णु प्रिया उन चरण पादुकाओं को लेकर प्रणाम कर, शिर पर रख हृदय में धारण कर वापिस लौट गई।

प्रभु जननी से आज्ञा ले वृन्दावन दर्शन करने के लिये चले। संग में अन गिनत भक्त लोग भी कीर्तन करते हुये चलने लगे। गंगा किनारे चलते २ महाप्रभु का समाज गौड़ नगर के पास पहुंचा। गौड़ का राजा सैयद हुसैन साह उनकी तुमुल ध्वनि सुन कर अपने राज्य पर कोई शत्रु चढ़ आया ऐसे

शंकित होकर अपने ब्राह्मणकुमार दो हिन्दु मंत्री दबिरखास और साकर मल्लिक जिनके आचरण यवन बादशाह के पास रहने से प्रायः यवनों जैसे हो गये थे को बुलाकर इस विषय का सब हाल पूछा। उनकी महाप्रभु को देख कर उन पर पूर्ण श्रद्धा हो गई थी। उन्होंने सब वृत्तांत बता दिया। बादशाह यह हाल सुन कर आश्चर्यान्वित हो बोला कि यदि मैं राजा होकर भी इतने मनुष्य इकट्ठा करना चाहूं तो नहीं हो सकते और इस संन्यासी के पीछे इतने असंख्य मनुष्य स्वेच्छा से विचरते हैं। ये जरूर कोई महान् ईश्वरीय व्यक्ति हैं। इसके उपरान्त रात्रि को ब्राह्मणकुमार दोनों भाई दीन हो प्रभु के पास जा चरणों में लिपट गये। महाप्रभु ने उन्हें श्रीकृष्ण भक्ति का उपदेश देकर उनका नाम रक्खा सनातन और रूप।

तदनन्तर महाप्रभु रूप और सनातन की सम्मति से इतने मनुष्यों को साथ लेकर वृन्दावन जाना उचित न जान वापिस शान्तिपुर लौट आये और थोड़े दिन फिर माता को सुख देकर अनेक भक्तों को उनके घर जाने की आज्ञा देकर नीलाचल चले आये। यहां हर समय भक्तों के पास 'कब वृन्दावन के दर्शन होंगे' कह कर रुदन करने लगे। महाप्रभु की इतनी दीन और करुण स्थिति देख कर भक्तोंने उनका वृन्दावन जाने का प्रबंध कर दिया। रक्षा के लिये साथ में कुछेक भक्त भी गये। रास्ते में काशी होते हुए वृन्दावन पहुंचे। वहां सब स्थानों को तथा वृक्षलता और वहां की रज को देख प्रभु गद्गद् हो धूल में लोटने लगे। कुछ दिन वहां रह जब लौटने लगे तब एक बार बंशी की ध्वनि सुन मूर्छित होगिर पड़े। बहुत से भक्त भी प्रभु को घेर कर बैठ गये। उसी समय एक पठान राजकुमार बिजलीखां अपने धर्मगुरु और सैन्य समेत उधर से जा रहे थे। उन लोगों ने प्रभु को मूर्छित देख उन के भक्तों को लुटेरे समझ सब को गिरफ्तार कर लिया इतने में महाप्रभु चैतन्य जागकर हुंकार कर उठके फिर कीर्तन करते हुए नृत्य करने लगे इस से बिजलीखां ने डर कर सब भक्तों को छुड़ा दिया और प्रभु के शांत होने पर अपने साथियों समेत उनकी शरण हुवा।

वहांसे प्रभु प्रयाग जी पहुंचे। यहीं रूप अपने कनिष्ठ भ्राता अनुपम सहित सब राज कार्य और घर द्वार छोड़ कर प्रभु से आ मिले। सनातन को बादशाह ने राजकार्य न करने के अपराध में कैद कर लिया था। महाप्रभु रूप को अपने भ्राता सहित वृन्दावन जाकर गुप्तस्थानों का उद्धार करने की आज्ञा दे काशी चले आये। काशी में भी सार्वभौम सरीखे एक प्रकाशानन्द सरस्वती नामक विद्वान् संन्यासीमहाप्रभु से ईर्षा रखा करते। उनके पागलोंकी भांति भटकने का कारण पूछने पर महाप्रभु प्रकाशानन्द से बोले कि मेरे गुरु ने मुझे मूर्ख समझ कर वेदांत का अनधिकारी जान यही उपदेश दिया है:-

हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम्।
कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा॥

इस तरह कितनी ही बातें होने के बाद महाप्रभु ने सार्वभौम की तरह प्रकाशानन्द पर भी कृपा की जिस से वह भी पागल हो नृत्य करने लगा। अब प्रकाशानन्द का नाम प्रबोधानन्द रख कर उसे भी वृन्दावन जाने की आज्ञा दी। सारा काशी नगर प्रेम की बाढ़ में डूब गया। यहीं सनातन भी किसी प्रकार कारागृह से मुक्त हो महाप्रभु से आ मिला।

गौड़ के पूर्व अधिकारी सुबुद्धिराय यवनद्वारा जबरदस्ती जलपान कराये जानेके कारण जातिच्युत हो काशी में प्रायश्चित्त करने आये थे। यहां के पंडितों ने उन्हें गरम घृत पान कर प्राण त्याग करने का प्रायश्चित्त विधान बताया। जब वे यहां महाप्रभु के पास आये तो उन्होंने उन्हें श्रीकृष्ण भजन करने का प्रायश्चित्त विधान बता कर वृन्दावन भेज दिया।

श्रीगौराङ्ग दिन रात श्रीकृष्ण प्रेम में मस्त रहते थे। आंखों से पानी के फव्वारे से छूटते थे जिससे सब कुछ भीग जाता। सर्वदा प्रेम में मूर्छित से रहा करते एक बार पूर्णिमा की रात्रिको समुद्र के नीले जलपर चन्द्रमा की चान्दनी पड़ती देख महाप्रभु समझे कि यमुना में श्रीराधाकृष्ण जलकेलि कर रहे हैं और इसी प्रेमावेश में समुद्र में कूद पड़े। दूसरे दिन प्रातः काल मछुवे के जालमें फंस कर निकल आये। इसी तरह पहिले भी महाप्रभु यमुना जी और गंगाजी में कूद पड़े थे तब लोगों ने बड़ी कठिनता से इन्हें निकाला था।

इस प्रकार सं० १५८३ की आषाढ़ कृष्णा सप्तमी को रविवार के दिन तीसरे पहर ४८ वर्ष की अवस्था में महाप्रभु मंदिर में जाकर प्रार्थना करते हुए भक्तों के देखते देखते श्री जगन्नाथ जी की मूर्ति में लीन हो गये।

शचिदेवी का देहान्त इसके कुछ पूर्व ही हो चुका था। महाप्रभु के श्री जगन्नाथ जी की मूर्ति में लीन होने के बाद श्री विष्णु प्रियाजी उनकी मूर्ति स्थापन कर ईश्वरवत् पूजा करने लगी। विष्णुप्रियाजी के बाद उनके भाई माधवाचार्य इस सेवा के अधिकारी हुये। बंगाल में अब भी पाश्चात्य सभ्यता के अनुगामी अंग्रेजी पढ़े लिखे युवकों में इन्हीं के प्रतापसे भक्ति के अंकुर देखने में आते हैं। चैतन्य महाप्रभु की लीला भूमि नवद्वीप-इस समय भी एक दर्शनीय स्थान है। वहां इतने प्रेम से हरि कीर्तन होता है कि उसके प्रभाव से लोग प्रेमावेश में मूर्छित हो जाते हैं। वहां कई ऐसी संस्थायें भी हैं जिनका एक मात्र उद्देश्य श्रीभगवन्नाम का प्रचार करना है और जो अपने अपने उद्देश्य की प्राप्ति के लिये पूर्ण प्रयत्न कर रही हैं कलकत्ते की तरफ जाने वाले पाठकों को उचित है कि वे अवश्य ही एक बार श्रीगौराङ्ग देवकी उस लीला भूमि का दर्शन कर हृदय को शीतल करें। श्रीगौराङ्ग के जीवन की ऐसी अनेक अलौकिक घटनायें हैं जिनका इस छोटे से स्थान में वर्णन करना असम्भव है।

---

# विचित्रलीला।

[ले० श्री मेलाराम जी वैश्य भिवानी]

प्रभु तुझे चंगा लगे सोई चंगा ॥

रूपवन्त गादे द्वार भुके सिर गद्दी गहन अपंगा।
मूढ़न के सिर मुकुट विराजत गुनियन का सिर नंगा ॥ १ ॥
भूखे रहत फिरें वनवन में तज कर महल सुरंगा।
फिर भी तेरा भेद न पावत चलचल थका कुरंगा ॥ २ ॥
हरि तुझ से क्या प्रीत करें हम करते हाल कुढंगा।
हरिभक्तन के कांधे कम्बल भोगे भोग लफंगा ॥ ३ ॥
क्षार किया जलका निधि सागर अमृत की लघु गंगा।
मेला प्रभु की अद्भुत लीला हरिभज त्याग अढ़ंगा ॥ ४ ॥

---

# भगवद्भक्ति

[ले० पूज्य श्री भोले बाबा अनूपशहर]

सर्वान्तरः स्वयं ज्योतिः सर्वाधिपतिरस्तियः ।
समस्तसाक्षी सर्वात्मा तन्नमामि महेश्वरम् ॥

## भागवत् धर्म प्रचारक निष्ठा ।

धर्म प्रचारक सन्त शान्ति कारक भव तारक ।
लिया भागवत् धर्म, शोक भय मोह निवारक ॥
भगवत् चरणन प्रेम, नित्य भगवत् गुण गाते ।
कहत सुनत मन लाय, परस्पर रहत सुनाते ॥
भोला ! ऐसे भक्तवर चरण कमल शिर धारे ।
गाथा तिनकी पाप हर कहि सुनि पाप निवारे ॥

मैं सारामः-हे भगवन् ! कल आपने धर्म का वर्णन किया था और धर्म निष्ठ भक्तों की गाथायें सुनाई थीं, कृपा करके आज यह बताइये कि धर्मनिष्ठा और भागवत् धर्म में क्या अंतर है और भागवत् धर्म प्रचारकों की कथा भी सुनाइये, भगवद्भक्तों के चरित्र सुनने से अवश्य मन का मैल दूर होता है, ऐसा मुझे, अनुभव होता है जब से हरिश्चन्द्रादि की कथा सुनी हैं, तब से मेरे मन में बहुत आल्हाद होरहा है और चन्द भक्तों की कथा सुनने को उत्साह होता है,

मस्तरामः-भाई धर्मनिष्ठा का अभिप्राय कर्म से है, कर्म दो प्रकार का होता है एक सकाम और दूसरा निष्काम । इन दोनों प्रकार के कर्मों का धर्म-निष्ठा में अन्तर्भाव है । भगवद्भक्ति के संबंध से सेवा पूजा भजन, स्मरण, कीर्तन इत्यादि जो कुछ किया जाता है, उसका नाम भागवत् धर्म है । यह भागवत् धर्म निष्काम ही करने में आता है, क्योंकि भक्त के सब कर्म भगवत् अर्पण रूप होते हैं । ऐसा करने से भक्त का अंतःकरण बहुत शीघ्र ही शुद्ध और निर्मल होजाता है । जब भक्त का मन सावधान होकर भागवत् धर्म में लग जाता है और प्रति क्षण उसी में चित्तवृत्ति लगी रहती है तो फिर भक्त को अन्य कर्म करने की आवश्यकता नहीं रहती, अन्य कर्म करे अथवा न करे, इसमें भक्त स्वतंत्र होता है, बहुत से आचार्यों का यह मत है कि कर्मों के प्रभाव से भगवद्भक्ति प्राप्त होती है इसलिये जब तक देहानुसंधान को भूल कर भगवत् स्वरूप में मग्न न हो जाय तब तक संध्या आदिक नित्य कर्म करता रहे, कर्म का त्याग न करे यद्यपि यह बात ऊपर की दृष्टि से देखने से विरुद्ध सी जचती है परन्तु सिद्धांत में कुछ विरोध नहीं है क्योंकि भागवत् धर्म में एकाग्र चित्त वाला जितने कर्म करता है वे सब भगवद्भक्ति रूप ही हैं, इसलिये उनको कर्म समझना ही न चाहिये । यह भागवत् धर्म बहुत ही जल्दी संसार समुद्र से पार करने वाला जहाज रूप है। इस जहाज के चलाने वाले धर्म प्रचारक मल्लाह के समान हैं जो आप भी पार जाते हैं और दूसरों को भी पार पहुंचा देते हैं । जिस पदका नाम तरण तारण है, वह इन्हीं भक्तों के आधीन है ।

भागवत् धर्म के प्रचारक स्वयं भगवत् हैं । भगवत् ही ब्रह्माजी को वेद का उपदेश देते हैं और वेद के अनुकूल भागवत् धर्मकी प्रवृत्ति में लगे

रहते हैं, विशेष कृपालुता के कारण भगवन् इस धर्म के प्रचार करने में निरन्तर कटिबद्ध रहते हैं। मात्र वेदों से कार्य न चलते देख कर वेदों का अर्थ प्रकट करने के लिये वेदान्त, पातञ्जल, मीमांसा, सांख्य, न्याय, वैशेषिक छै शास्त्र की रचना ऋषीश्वरों द्वारा भगवन् ने ही कराई हैं। वाल्मीकीय रामायण, महाभारत आदि इतिहास पुराणों की रचना भी भगवन् की इच्छा से हुई है। इन सब में वेदों का विवरण है, इससे भागवत् धर्म की प्रवृत्ति होती है और इन के श्रवण, कीर्तन करने से जीव कृतार्थ होते हैं। जब भगवन् ने देखा कि लोगों की रुचि काव्य के पद पदार्थ में है तो उन्होंने नाटक, चम्पू, काव्य, साहित्य शास्त्रों द्वारा भागवत् धर्म की शिक्षा दी। जब उनके बोध से भी लोगों की बुद्धि भ्रमित और श्रमित देखी तो टीका करने का प्रचार किया। जब उनको भी लोग ठीक २ न समझने लगे तो सूरदास, तुलसीदास, नाभा, अग्रदास, कृष्णदास इत्यादि को कलियुगमें प्रकट करके उनने भगवत् चरित्र और भागवत् धर्मों की रचना भाषा में कराई। इसके सिवाय भागवत् धर्म के प्रचार के लिये दूसरा उपाय यह किया कि आप अपने मुखारविन्द से उन धर्मोंको स्पष्ट करके समझाया और लक्ष्मीजी, अपने पार्षद ब्रह्मा, शिव, सनकादिक, नारद, शुक्राचार्य बृहस्पति, वशिष्ठ व्यासादि हजारों को आचार्य बना कर भागवत् धर्म का प्रचार किया। कलियुग में शंकराचार्य, रामानुज स्वामी, निम्बार्क स्वामी, माधवाचार्य, विष्णु स्वामी, वल्लभाचार्य, हित हरिवंश इत्यादि सैकड़ों आचार्य अपनी विभूति कला, अंश, आवेश अवतार से प्रकट किये। जिनकी कृपा से करोड़ों जीव महा पापियों का भी उद्धार होता है। फिर भगवान् ने तीसरा यह विचार किया कि अपने मन्दिर, मूर्ति और भजन तपके स्थान बदरिकाश्रम आदि और अपने धाम मथुरा अयोध्या आदि और गंगा, यमुना, पुष्कर आदि तीर्थ प्रकट किये, जिनके प्रभाव से भक्ति का प्रचार हुआ और हो रहा है, सारांश यह है कि भगवन् को भागवत् धर्म का प्रचार करना और उसको दृढ़ रखना इतना प्रिय है कि जब कभी उसमें थोड़ासा भी विघ्न आन पड़ता है अथवा आने वाला होता है तो स्वयं भगवन् अवतार लेकर विघ्न करने वालोंको वध करके अपने धर्म को स्थिर रखते हैं। गीता में भगवान् का वचन है कि हे अर्जुन! जब २ धर्म की हानि और अधर्म की वृद्धि होती है तब मैं अपने को उत्पन्न करता हूं, भक्तों की रक्षा करने के लिये, दुष्टों का नाश करने के लिए और धर्म की संरक्षा करने के लिये मैं युग २ में अवतार धारण करता हूं

हे मंसाराम! जब भगवान् को यह धर्म इतना प्यारा है तो प्रत्येक भक्त को चाहिए कि जहां तक हो सके स्वयं भागवत् धर्म के प्रचार करने में परिश्रम और प्रयत्न करे और दूसरों को भी ऐसा करने की प्रेरणा करे क्योंकि ऐसा करने से भगवन् की प्रसन्नता होती है और इस धर्मका प्रचार करने वाला भगवन् की विभूति अवतारों में गिना जाता है। एक स्थल पर लिखा है कि जो कोई एक भगवन् विमुख जीव को भगवन् संमुख कर देता है तो उस को दस हजार अश्वमेध यज्ञ का फल होता है। भगवन् कथा कराना, ठाकुर द्वारा, भजनाश्रम, कुटी, धर्मशाला बनवाना, वाटिका लगाना, कूप, तड़ाग खुदवाना, पाठशाला खोलना, तथा ऐसे मन्दिर बनवाना कि जिन से भजन करने वालों को और प्रजा को आराम हो, यह सब भागवत् धर्म हैं, भगवत्

चरित्रों के कवित्त बनाना, प्राचीन ग्रन्थों के टीका करना, प्राणियों को अधर्म से हटा कर भगवत् धर्म में लगाना, यह भी भागवत् धर्म है। सब स्थानों पर अथवा बदरिकाश्रम, अयोध्या, हरिद्वार आदि स्थानों पर सदाव्रत लगाना, एकादशी को भगवत् कीर्त्तन का समाज होना, जिस दिन भगवत् के अवतार हुये हैं, उन दिनों में उत्सव मनाना, यह सब भगवद्भक्ति है। विद्या के पढ़ने पढ़ाने में परिश्रम और व्यय करना, भक्ति, ज्ञान, वैराग्य, सदाचार के पत्र निकालना अथवा ऐसे कोई काम करना जिनके करने से लोगों का मन भगवत् के संमुख हो, ये सब भगवत् धर्म के बढ़ाने की सामग्री है। इस सामग्री का बढ़ाने वाला भागवत् समझा जाता है, ऐसा पुरुष समाधिनिष्ठ योगी से उत्तम है क्योंकि योगी केवल अपनी शान्ति का यत्न करता है और यह भक्त तो सर्व साधारण का हित चाहने वाला है। ऐसे भक्त के लिये ही भगवान् ने गीता में कहा है कि जो मेरे इस कहे हुये धर्म को मेरे भक्तों को सुनावेगा, वह मुझे सबसे अधिक प्यारा है, उसके समान कोई श्रेष्ठ नहीं है। जिन भगवद्भक्तों की मनोवृत्ति केवल लोगों के उद्धार और उपकार निमित्त है, उनकी बड़ाई तो शेष शारदा भी नहीं कर सक्ते, ऐसे लोग तो कृतार्थ रूप ही हैं। यदि कोई अपने यश और संसार के दिखाने को भी भगवत् धर्म का प्रचार करता है तो वह भगवत् को प्यारा है क्योंकि उसके प्रभाव से हजारों को शुभ गति प्राप्त होती है, इस धर्म के प्रभाव अथवा किसी भक्त के आशीर्वाद से ऐसे पुरुष का मन भी भगवत् में लग ही जाता है। भगवत् धर्म प्रचारकों की महिमा शास्त्रों में इतनी लिखी है कि उसका वर्णन नहीं हो सक्ता। प्रपन्नामृत पोथी में अनन्ताचार्य की कथा लिखी हुई है। उस कथा से भगवद्भक्तों की महिमा प्रकट होती है, वह ही कथा सुनाता हूं, ध्यान देकर सुनः-

## अनन्ताचार्य की कथा

शहर से ठाकुर द्वारे को जाने के मार्ग में एक गड्ढा पड़ गया था। आने जाने वाले को बहुत कष्ट होता था। यह देख कर अनन्ताचार्य जी टोकरी और फावड़ा लेकर उस गड्ढे को भरने लगे और अपनी गर्भवती स्त्री को भी उसी धंधे में लगा लिया जब प्रसव काल समीप आया और टोकरी ढोने में स्त्री को क्लेश होने लगा तो भगवत् पनिहारे का रूप धारण करके आये और स्त्री को विश्राम करने की आज्ञा देकर उसके बदले में आप टोकरी ढोने लगा जब अनन्ताचार्य ने देखा कि स्त्री के बदले कोई पनिहारा टोकरी ढो रहा है तो सोटा लेकर यह कहते हुये दौड़े "अरे! तू कौन है? हमारे भाग में बलात्कार से क्यों साझी होता है"? समीप पहुंच कर सोटा लगाने को ही थे कि भगवान् पधराये और भागने के सिवाय अन्य उपाय न देख कर वहां से भाग कर मन्दिर में जा घुसे! अनन्ताचार्य भी पीछे २ सोटा लिये हुये मन्दिर में पहुंचे तो क्या देखते हैं कि भगवत् के श्री अंग मिट्टी और धूल में भरे हुये हैं। अनन्ताचार्य समझ गये कि भगवत् स्त्री पर दया करके टोकरी ढोने चले गये थे, हाथ जोड़ कर प्रेम में मग्न होकर इस प्रकार विनय करने लगेः-

हे दीनबन्धो! हे करुणा सागर! आपकी महिमा और माया अपार है! कौन पार पा सक्ता है? आपके कृपा ही आपकी महिमा को जानते हैं

और वे ही माया से पार हो सक्ते हैं, भला ! सबके स्वामी होकर आप करुणावश होकर किंकर का काम करने लगे, इतनी दयालुता का क्या ठिकाना है ! परन्तु यह कुछ नई बात नहीं है। हे भगवन् ! कृपा करके अपने सब भक्तों की बुद्धि सुधार दीजिये कि आपकी माया के वश न हों और आप के चरणों में सदा प्रीति करें ! आपकी चरणों की प्रीति के सिवाय दूसरा कोई कल्याण का मार्ग नहीं है ! आपका भजन ही सार है, जो भजन करते हैं, उनका बेड़ा पार है, जो आप से विमुख हैं, जन्म २ दुःख पाते हैं, जो आपके शरण हैं उनको यहां वहां, लोक परलोक में सुख ही सुख है।

हे मंसाराम ! भगवत् का अपने भक्तों पर इतना प्रेम है कि भक्त के लिये वे सब कुछ करने को तैयार हैं, इसलिये ऐसे करुणा निधान स्वामी की प्रसन्नता के लिये अपने २ सामर्थ्य और विश्वास के अनुसार सब लोगों को उचित है कि इस परम धर्म के प्रवृत्त करने में तन से, मन से और प्राण से उपाय और परिश्रम करें। जिस किसी को जिस भाषा की विद्या प्राप्त हुई है और काव्य रचना में जिसकी चित्तवृत्ति हो उसको उसी भाषा में भगवत् चरित्रों की रचना करनी चाहिये क्योंकि जिस काव्य में भगवत् चरित्रों का वर्णन नहीं होता, वह काव्य कैसा ही निराला क्यों न हो, निष्फल और अधम ही है। जैसे चन्द्रवदनी स्त्री को बिना वस्त्र देखने का निषेध है। ऐसे ही भगवत् चरित्र रहित काव्य के देखने का भी दोष है।

## धन की प्राप्ति का उपाय।

हे मंसाराम ! सब जानते हैं कि संसार का व्यवहार धन से चलता है। धन कोई साथ तो लाता नहीं, ले भी नहीं जाता, यहीं का धन है, यहीं रह जाता है। लक्ष्मी भगवत् की पतिव्रता पत्नी है, सदा पति के साथ रहती है, जहां उसके स्वामी भगवत् नहीं रहते, तुरंत उस स्थान को छोड़ कर चली जाती है। जहां भगवत् की भक्ति होती है, वहीं लक्ष्मी टिकती है इसलिये जिस किसी को धनवान् बनने की इच्छा हो, उसको भगवत् के भजन में लगना चाहिये। हजारों साहूकार और ऐश्वर्यवान् हो गये हैं, किसी का नाम भी कोई नहीं जानता ! जो कोई तड़ाग, धर्मशाला आदि बनवा गये हैं, उनका नाम अब तक प्रकाशित है और आगे भी प्रकाशित रहेगा ! धन की तीन गति हैं. धन का धर्म में लगना उत्तम गति है, अपने को सुख देने में खर्च होना, मध्यम गति है और चोर डाकू ले जांय, राजा छीन ले अथवा अग्नि से जल जाय यह अधम गति है। इसलिये धन को धर्म में लगाना चाहिये। धन को पाकर जो भागवत् धर्म का प्रचार न करें, उनके लिये शोक है !

## विद्या की आवश्यकता।

ईश्वर, जीव, संसार, स्वर्ग, नरक, भक्ति, ज्ञान और वैराग्य तथा शिष्ट पुरुषों की रीति और संप्रदाय का मत जानना ये सब विद्या के आधीन हैं। जब से ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रों में से शास्त्रों का पढ़ना उठ गया है, तब से सब धर्मों का नाश हो गया है और होता चला जा रहा है। दक्षिण देश चीनापट्टन, तैलंग, द्रावड़, बारह मलहार में यह रिवाज है कि जो कोई लड़का शास्त्र पढ़ने में मन नहीं लगाता तो उसके बड़े लोग वहां के

देशाधिपतिकी आज्ञा लेकर उसके पैरोंमें बेड़ी डालकर पाठशाला में भेज देते हैं और जब तक वह शास्त्र न पढ़जाय तब तक बेड़ी नहीं खोलते। इसलिये वहां के सब लोग धर्म में स्थिर हैं और ब्राह्मण से लेकर शूद्र पर्यन्त वहां का कोई मनुष्य इष्ट उपासना से शून्य और अज्ञ नहीं होता, और न किसी विरुद्ध धर्मों के फंदे में आसक्ता है। बिना विद्या के धर्म जानने में नहीं आता इसलिये यथा संभव तन से मन से, और धन से अपने और परायेको शास्त्र पढने पढानेमें सहायता देनी चाहिये। जो संस्कृत न पढ सकें तो न सही, भाषा का पढना ही पर्याप्त है। भाषा पढ़ने से ही मनुष्य अपने मनोरथ को पहुंच सक्ता है। सूरसागर और तुलसीकृत रामायण को भगवत् ने ऐसा प्रताप दिया है कि जो उनको नियम पूर्वक पढ़ते हैं, वे अवश्य भगवत् के प्यारे हो जाते हैं। इसी प्रकार नन्ददास, कृष्णदास, अग्रदास आदि की वाणी को प्रताप है और भक्तमालका तो कहना ही क्या है, लोक परलोक दोनों में सुख देने वाली और भगवत् की प्राप्ति कराने वाली है। जितनी लौकिक विद्या पढने की आवश्यकता है, उससे भी अधिक भगवत् सहस्रनाम, गीता और स्वराज आदि स्तोत्रों का पढा देना प्रयोजन वाला है। जो लोग अपने बच्चों को भागवद्धर्म में नहीं लगाते अथवा भागवत् धर्म संबंधी विद्या नहीं पढाते, तो जीवन पर्यन्त जो पाप बच्चों से होते हैं, वे उनके बड़ों के शिर हैं क्योंकि पढा देना उनका धर्म था और उन्होंने अपना धर्म न किया इसलिये अपना धर्म पूरा न करने के वेही उत्तर दायक हैं, जिनके वंश में भगवद्भक्त होते हैं, उनका नरक से उद्धार हो जाता है, इस में प्रहाद आदि भक्तों की कथायें साक्षी हैं। हे मंसाराम ! नन्द यशोधानंदन श्याम सुन्दर का एक भक्त इस प्रकार ध्यान करता है:-

सूर्यनारायण की पुत्री नचिकेता के गुरु यमराज की बहिन श्रीयमुनाजीके तट पर एक परम मनोहर वाटिका है, वहां सुन्दर निर्मल जल से पूर्ण पांच दिव्य तड़ाग हैं, सब में फव्वारे चल रहे हैं, बीच का तड़ाग संगमरमर का है, उसकी शोभा सब से अनोखी है, रंग २ के कमल शोभा दे रहे हैं, वाटिका के वृक्ष फल फूलों से लद रहे हैं, फूलों की महक मस्तिष्क को तर कर रही है। फूलों की छवि मन को आल्हाद देने वाली है, मोर, कोयल, तोता, मैना, कबूतर, सारस, हंस आदि मधुर शब्द से चहचहाते हुये घूमते हुये मन को मोहित कर रहे हैं, तड़ाग की रोशों पर श्री नन्दनन्दन, भक्त उर चन्दन, शोभा धाम, घन श्याम अपने सखाओं के साथ आनन्द से टहलते हुये विहार कर रहे हैं, मुख कमल की उपमा सूर्य, चन्द्रमा, माणिगण अथवा कमल, गुलाब आदि पुष्पों से दी जाय तो थोड़ी है क्योंकि उन सबकी शोभा पृथक् २ है और मुख की मनोहरता में सब की शोभा एकत्र संपूर्ण है, मयूर पत्त का जड़ाऊ मुकुट शीश पर धारण किये हुये हैं, कानों में कुंडल शोभित हैं, कुंडलों में फूलों के गुच्छे गुथे हुये हैं, गले में मोतियों की माला है, उस माला के ऊपर फूलों की माला है, हाथों में कड़े हैं, सुवर्णतारी का दुपट्टा बांकी धज से कंधे पर पड़ा हुआ है, पीताम्बरी धोती कटि में पहिने हुये हैं चरण कमलों में झांझ शोभा दे रहे हैं, माथे पर दौड़ धूप से पसीने की छोटी २ बूंदे अद्भुत् शोभा के साथ झलक रही हैं, घुंघरवारी अलकें

पवन से बिखर कर कपोलों पर आगई हैं, ऐसी अनोखी शोभा देख कर भक्त का चित्त आनन्द में हो गया है और वह इस प्रकार प्रार्थना करता है:- 'हे नट नागर! करुणा सागर! दीनबन्धो! इस किंकर की तरफ किंचित् कृपा दृष्टि कीजिये, आपके चरण कमलों के सिवाय इस दासानुदास के लिये अन्य कोई शरण नहीं है! यदि मेरे कर्मों की तरफ आप दृष्टि करेंगे तो करोड़ों कल्प तक मेरा उद्धार होना कठिन है, मुझे तो केवल आपकी कृपाका आसरा है, यद्यपि जानता हूं कि संसारी विमुख श्रीमानों की जितनी खुशामद और मन रंजन करता हूं उसका हजारवां भाग भी आपके स्मरण भजन में लगाऊं तो तुरंत ही बेड़ा पार है, फिर भी यह मन ऐसा भाग्य हीन, दुष्ट और पापी है कि भजन में नहीं लगता, विषयों का ही चिंतवन करता है, हे भगवन्! जैसा इस समय मुझे आपका ध्यान हो रहा है, इसी प्रकार सदा बना रहे, ऐसी कृपा कीजिये, त्राहि! त्राहि!! प्रभो त्राहि"!!!

हे संसाराम! अब मैं तुझे धर्म पूचारक भक्तों की गाथा सुनाता हूं।

## कथा ब्रह्माजी की।

ब्रह्माजी इस चराचर जगत् के पिता और धर्म पूचारक भक्तों में सब से प्रथम, श्रेष्ठ और भगवद्विभूति स्वरूप हैं भगवान् के नाभि कमल से इनका जन्म हुआ है। पश्चात् तप करने से संसार की उत्पत्ति करने का ज्ञान और सामर्थ्य इनको प्राप्त हुआ है इन्होंने संसार में भागवत् धर्म का पूचार किया है। आज तक इन्हीं का उपदेश चला आ रहा है। जैसे ये इन्द्रादि देवताओं को उपदेश देते हैं, इसी पूकार जो कोई उत्तम कर्म करके मनुष्य लोक में से ब्रह्मलोक को जाता है, उसको भक्ति, ज्ञान का उपदेश करते हैं, जिसके पूभाव से मुक्ति पाप्त होती है। जब कभी भागवत् धर्म में बाधा पड़ती है और देवताओं को क्लेश होता है तो ब्रह्माजी भगवत् के अवतार होने का उपाय करते हैं। भगवत् का अवतार होने से दुष्टों का नाश होता है और भगवत् धर्म की पूवृत्ति होती है। ब्रह्माजी की कथा पुराण इतिहास आदि में पूसिद्ध है, इसलिये संक्षेप से तुझे सुनाई है। ब्रह्मा, आत्मभू, सुरज्येष्ठ, परमेष्ठिन्, पितामह, हिरण्यगर्भ, लोकेश, स्वयंभू, चतुरानन, धातृ, अब्जयोनि, द्रुहिण, विरंचि, कमलासन, स्रष्टृ, पूजापति, वेधस्, विधातृ, विश्वसृज् और विधि ये बीस नाम ब्रह्माजी के हैं।

### कुंडली

जाये भगवत् नाभि से ब्रह्मा जग कर्तार।
चारि वेद रचि जगत में कीन्हा धर्म पूचार॥
कीन्हा धर्म पूचार, श्रेय कर मार्ग बताया।
कर्म भक्ति वैराग्य, ज्ञान विज्ञान सिखाया॥
नारद कपि सनकादि, सीख दे जगत पठाये।
ब्रह्मा हितकर देव, नाभि भगवत से जाये॥

## कथा शिवजी की।

भागवत् धर्म पूचारकों में शिवजी राजा हैं, इनकी पदवी भक्तराज है भक्तिके पूचार करने में इनको इतना उत्साह है कि स्वयं आचार्य बन कर पूजा को उपदेश देते हैं। शिवजी विष्णुस्वामी संपूदाय के आचार्य हैं। जब भारत में सेवड़ों की अधिक वृद्धिहुई तो स्मार्त्त संपूदाय में शंकराचार्य का अवतार लेकर इन्होंने स्मार्त्त मतका पूचार किया। देवासुर संग्राम में जब

देवता और दानवों ने मिलकर समुद्र मथा और क्षीर सागर में से हलाहल विष निकला, सब देवता भस्म होने लगे। शिवजी दया करके उस विष को पी गये! तभी से लोक में इनका नाम नीलकंठ प्रसिद्ध है। एक बार सतीजी ने रघुनाथ जी की परीक्षा लेने के लिये जानकी जी का रूप धारण कर लिया था। शिवजी ने उसी समय सती का त्याग कर दिया। जब सती जी ने वह शरीर त्याग कर हिमाचल के यहां जन्म लिया और बड़ी कठिन तपस्या की, तब शिवजी ने उनको अंगीकार किया! वाह दयालुता! वाह भक्त राजता! एक बार पार्वती जी विष्णु सहस्र नाम का पाठ कर रही थीं, शिवजी ने उनको बुलाया तो कहने लगीं कि पाठ कर रही हूं। शिवजी ने कहा हे प्रिये! एक राम नाम लेने से हजार नाम जपने का फल होता है। पार्वती जी दृढ़ विश्वास करके राम नाम लेकर शिवजी के पास चली आई। तब से शिवजी ने प्रसन्न होकर उनको अपने बायें अंग में रख लिया है। एक बार सनकादि ने शिवजी को भगवत् प्रसाद दिया तो आनंद से बेसुधि हो कर पार्वती को भूल गये और प्रसाद पा लिया। तब पार्वती जी ने शाप दिया कि आज से तुम्हारा निर्माल्य जो खायगा, वह नरक में जायगा! तब से शिव निर्माल्य त्याज्य है। एक बार शिव पार्वती दोनों उजाड़ वन में जारहे थे। मार्ग में दो स्थानों पर उतर कर शिवजी ने साष्टांग दंडवत् किया। पार्वती जी ने कारण पूछा तो भोले नाथ बोले 'हे प्रिये! एक स्थान पर तो हजार वर्ष हुये एक भगवद्भक्त हो गया है और दूसरे स्थान पर हजार वर्ष बाद एक भक्त होने वाला है इसलिये मैंने प्रणाम किया है क्योंकि ये दोनों स्थान दंडवत् करने और पूजने योग्य हैं'! वाह भक्त वत्सलता! शिवजी के ऐसे अनेक चरित्र हैं। जिनको सुन कर भक्त जन प्रसन्न होते हैं और भगवत् विमुख मोह को प्राप्त होते हैं। कोई कहते हैं कि भगवान् रामचन्द्रजी के बाल स्वरूप के शिवजी उपासक हैं, यह ठीक है परंतु भगवत् के अन्य स्वरूपों में भी शिवजी की वैसी ही प्रीति है। एक बार श्रीकृष्णचन्द्र महाराज के रास विलास में सखी रूप धारण करके पहुंचे थे और एक बार वीर रस की शोभा बढ़े उत्साह से जा कर देखी थी शिवजी महाराज भगवत् के ज्ञानी भक्त हैं। शम्भु, ईश, पशुपति, शिव, शूलिन्, महेश्वर, ईश्वर, शर्व, ईशान, शंकर, चन्द्रशेखर, भूतेश, खंडपरशु, गिरीश, गिरिश, मृड, मृत्युंजय, कृत्तिवासस्, पिनाकिन्, प्रमथाधिप, उग्र, कपर्दिन्, श्रीकंठ, शितिकंठ, कपालभृत, वामदेव, महादेव, विरूपाक्ष, त्रिलोचन, कृशानुरेतस्, सर्वज्ञ, धूर्जटि, नीललोहित, हर, स्मरहर, भर्ग, त्र्यंबक, त्रिपुरान्तक, गंगाधर, अंधकरिपु, क्रतुध्वंसिन्, वृषध्वज, व्योमकेश, भव, भीम, स्थाणु, रुद्र, उमापति, अहर्बुध्न्य, अष्टमूर्त्ति, गजारि और महानट, ये बावन नाम शिवजी के हैं। एक प्रेमी भक्त कहता है:—

## कुण्डली

भगवद्भक्त अनन्य शिव, कोऊ तिन सम नांय।
लात मारि सब विभव पै, भीख मांगि भव खाँय॥
भीख माँगि भव खाँय, शून्य मर्घट में बसते।
करें निरंतर योग भोग में भूल न फसते।
भक्तन कहँ निहाल आप कुछ पास न राखत।
भगवत् प्यारे रुद्र रुद्र कूँ प्यारे भगवत्॥

## कथा अगस्त्यजी की

अगस्त्यजी ऋषीश्वर, रामोपासक परम भक्त हैं। यह अनेक विद्याओं के आचार्य हैं। इनकी रची हुई अगस्त्य संहिता प्रसिद्ध है। इनका जन्म घट से हुआ था इसलिये इनको घटयोनिज भी कहते हैं। एकबार इन्होंने समुद्र का पान कर लिया था और फिर उपस्थ द्वारा बाहर निकाल दिया था। कहते हैं तभी से समुद्र खारी हो गया है। एक बार जब देवता और दानवों के बोझ से पृथिवी उत्तर की तरफ नीची और दक्षिण की तरफ ऊंची हो गई तब अगस्त जी दक्षिण दिशा में जा बसे। इनके प्रभाव से उत्तर की धरती ऊंची और दक्षिण की नीची होगई। एक बार मन्दराचल पर्वत बहुत ऊंचा हो जाने से सूर्य का प्रकाश रुकने लगा। अगस्त्य जी उसके पास गये जब उसने इनको प्रणाम किया, अगस्त्यजी ने आज्ञा की कि जब तक हम न आवें तब तक तू पड़ा रह। पर्वत अब तक पड़ा हुआ है। अगस्त्यजी अब उत्तर को नहीं जाते। अगस्त्य, कुम्भसंभव, मैत्रावरुणि ये तीन नाम अगस्त्यजी के हैं, इनकी सधर्मिणी स्त्री का नाम लोपामुद्रा है।

दोहाः—भगवद्भक्त अगस्त्य मुनि, महिमा अपरम्पार।
मंदराचल बैठा दिया, सागर कीन्हा खार॥

## कथा स्वामी रामानुज की।

जिस प्रकार भगवत् ने संसार के उद्धार के लिये चौबीस अवतार धारण किये इसी प्रकार भगवत् ने कलियुग में चार अवतार धारण करके भागवत् धर्म का प्रचार किया और चार सम्प्रदाय स्थापित किये एक सनकादि सम्प्रदाय, दूसरा श्रीसम्प्रदाय तीसरा शिव सम्प्रदाय और चौथा ब्रह्म सम्प्रदाय। सनकादि सम्प्रदाय के आचार्य निम्बार्क स्वामी हैं, श्रीसम्प्रदाय के आचार्य रामानुज स्वामी हैं, शिव सम्प्रदाय के आचार्य विष्णु स्वामी हैं, और ब्रह्म सम्प्रदाय के आचार्य माधवाचार्य हैं। संक्षेप से सबका वृत्तांत सुनाऊंगा। रामानन्द, व्यास, हित हरिवंशादि ने जिन सम्प्रदायों को प्रकट किया है, वे सब इन सम्प्रदायों के अन्तर्गत हैं। ये चारों सम्प्रदायें भक्ति रूपी भूमि स्थिर रखने को दिग्गजों के समान हैं। जैसे चारों दिशाओं के चार दिग्गज भूमि को स्थिर रखते हैं, नीचे नहीं जाने देते इस प्रकार ये चारों सम्प्रदाये भक्ति को दृढ़ करने वाले हैं। चारों सम्प्रदायों में से श्री सम्पदाय के आचार्य रामानुज स्वामी हैं। इनके प्रभाव से करोड़ों महापातकी और महापापी संसार समुद्र से तर गये हैं और अब भी तरते हैं। इनकी भक्ति और इनके प्रताप की महिमा सूर्य के समान प्रकट और विख्यात है। जन्म से लेकर परमधाम जाने के दिन तक का वृत्तान्त स्वामी रामानुज जी के पूर्णामृत ग्रन्थ में सम्पूर्ण लिखा है। इनकी चौरासी गादी हैं। गुरु परम्परा रामानुज स्वामी तक इस प्रकार है:-१ नारायण, २ लक्ष्मी जी, ३ विश्वकसेन, ३ शठकोप, ५ श्रीनाथ, ६ पुण्डरीकाक्ष, ७ राममिश्र, ४ यमुनाचार्य, ९ पूर्णाचार्य और १० रामानुज स्वामी। इनकी गादियों की परम्परा का पता लगाना कठिन है। इन्होंने यमुनाचार्य जी के संकेत से तीन प्रतिज्ञायें की थीं, एक तो यह कि श्रीवैष्णव सम्प्रदाय में रह कर उसकी सम्प्रदाय की रक्षा करूंगा, दूसरी यह कि ब्रह्मसूत्र पर श्रीभाष्य रचूंगा, और तीसरी

यह कि पुराणों के गूढार्थ को समझाने के लिये अभिधान आख्या बनाऊंगा। तीनों प्रतिज्ञायें इन्होंने पूर्ण कीं। संन्यास लेने के बाद इनका नाम 'यतिराज' विख्यात हुआ। गोष्ठपूर्ण नामक श्रीवैष्णव ने इनको जगत् के उद्धार के लिये एक गोप्य मंत्र बताया था। गुरु के मना करने पर भी इन्होंने उस मंत्र को बहुत लोगों को बता दिया। गुरु ने कारण पूछा तो कहने लगे 'हे स्वामिन्! गुरु द्रोहके कारण मैं अकेला नरक में चला जाऊं तो भलेही चला जाऊं, आपकी कृपा से अन्य लोगों का तो कल्याण होगा। दूसरों के उद्धार के लिये मुझे नरक में जाना शिर आंखों से स्वीकार है! गुरु ने यतिराज की दयालुता देख कर उन्हें गले से लगा कर अपनी बहुत ही प्रसन्नता प्रकट की। वाह दयालुता! धन्य हैं ऐसे परम उपकारी! वेदान्त पर श्रीभाष्य के सिवाय इन्होंने वेदान्त सार आदि कई ग्रन्थ बनाये हैं।

### कुण्डली

स्वामी रामानुज भये, मुख्य भक्ति आचार्य।
भगवद्भक्ति सिवाय जिन, किया अन्य नहिं कार्य॥
किया अन्य नहिं कार्य, भक्ति ही केवल कीन्हे।
रचे अनेकन ग्रंथ, अर्थ खोले अति झीने॥
पर हित गुरु का कोप, सहा भक्तन हित कामी।
मंत्र बताया गोप्य- धन्य रामानुज स्वामी॥

---

# तू और मैं।

[ले० श्री० प्रभुदत्त जी ब्रह्मचारी भूसी]

प्यारे! मन नहीं लगता।

क्यों?

क्योंकि तू छिपता है।

"तू खोजता ही नहीं, मैं तो खुल कर खेल रहा हूं"।

मेरे सर्वस्व! तू मुझे दीखता ही नहीं।

"तेरे पास ही तो हूं"।

'आंख ओझल सो पहाड़ ओझल' हुआ करता है मेरे पास, जब मेरी दृष्टि से ही परे है तो मेरे लिये बहुत दूर है।

"अरे, ओ! तेरी दृष्टि बिगड़ गई है"।

मेरे नियामक! किस प्रकार?

"तुझे रोग हो गया है रोग"।

नाथ! कैसा रोग? क्यों हुआ? किसने किया?

"अरे! तेरे भाग्य ने किया, चक्षुरोग है, स्वतः ही हुआ"।

मेरे भाग्य विधाता! तैंने मेरे भाग्य ऐसे क्यों बनाये?

'तेरी इच्छा से मूढ! तेरी राजी से'

हे मेरे पिता! इस प्रकार की राजी का भी तो कोई न कोई कारण ही होगा?

'हां, कारण क्यों नहीं, जन्म जन्मान्तरों के

भोग'।

मेरे जनक ! इस प्रकार जन्म मृत्यु के चक्कर में मुझे क्यों फंसाया ?

'इसलिये कि तू मेरी महत्ता को समझे'

ओ महतोमहीयान् ! मैं तो फिर भी तेरी महत्ता को नहीं समझता।

'यह तेरी भूल है'

संभव है ऐसा ही हो प्रभो ! किन्तु मैं दुःखी क्यों हूं, मुझे शान्ति क्यों नहीं ?

'अरे, रास्ता भूल कर भी कोई सुखी हो सकता है क्या'?

ओः मेरे पथ प्रदर्शक ! मैं रास्ता भूल क्यों गया ?

'भूल भुलैयाओं में पड़ कर'

भगवन् इन भूल भुलैयों का निर्माण किसने किया ?

'मैंने'

हे सर्वज्ञ ! इनको तैंने क्यों बनाया ?

'मेरी इच्छा, अपने विनोद के लिये, क्रीड़ा के लिये, कुतूहल के लिये, अपनी प्रसन्नता के निमित्त।

प्यारे विनोदी ! तेरे विनोद में और हमें दुःख मिले, यह तेरी कैसी क्रीड़ा है नाथ !

मेरी इच्छा तो यह थी, कि भूल भुलैयों को तटस्थ होकर देखते तो तुम्हें भी आनन्द आता। तुम अपने आप उसमें जाकर फंस गये भटक रहेहो, भोगते रहो। मुझ से क्या कहते हो ?

हे अनन्यगति ! जब हम भटक ही गये हैं तो इससे त्राण पाने का उपाय किससे पूछें ?

'जिसने इसका निर्माण किया हो'।

हे निर्माता ! तेरे सिवाय इसका निर्माण और कर ही कौन सकता है, तू ही बता कि हम इस अपार सागर से किस प्रकार तर सकते हैं।

'इसका पार पाना कठिन है'।

हे अखिलेश ! कोई न कोई उपाय तो अवश्य ही होगा।

'हां है'।

प्यारे ! हम दुःखी हैं। नाथ ! हम दीन हैं, दयालो ! हम कातर हैं। अशरण शरण ! हमारी रक्षा करो। प्रभो ! हमें कोई उपाय बताइये। त्राहिमाम् ! रक्ष माम् ?

इस प्रकार के कातरों को तो मैं सदा उपाय बताने को उद्यत हूं। अच्छा तो सावधान होकर सुनो—

दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया।
मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते॥

इति

---

# अभिलाषा।

[ ले० श्री० मदनगोपालसिंहल ]

श्रीपति, जनपति, जगपति, करुणा सागर, दीन दयाल हरे।
राधावर, गोपीवल्लभ, यशुदा नन्दन, नन्दलाल हरे॥
वंशीधर, चितचोर, मनोहर, कृष्ण, श्याम, गोपाल हरे।
पुरुषोत्तम, माधव, कृपालु, जन मानस-हृदय-मराल हरे॥ १

यही सोच है कौन नाम ले तेरी टेर लगाऊँ मैं ?
मात कहूं, या कहूं पिता या भ्राता तुम्हें बताऊँ मैं ॥
प्रियतम, प्राणाधार, प्राणपति कह निज प्रेम दिखाऊँ मैं।
क्या कह के सर्वस्व मेरे तुझको अभिलाष सुनाऊँ मैं ॥ २ ॥

सुन रक्खा है तेरी प्रेम-सरिता के तट जो आता है।
उस अमृत से प्रेम -नीर में गोता एक लगाता है ॥
बाहर आना दूर रहा देही की सुध बिसराता है।
प्रेम-नीर बन तेरी प्रेम-सरिता में लय होजाता है ॥३ ॥

प्रेम-स्रोत वो जहां बताते वो मारग मैं भी जाऊँ।
निज अस्तित्व मिटा कर मैं बस तेरे ही में मिल जाऊँ ॥
मुझको भी चाहना देहकी, है चाहना तुझे पाऊँ।
दिव्य चक्षु दे एक बार मैं जिससे तुझको लख पाऊँ ॥४॥

मेरे मन तेरे मन्दिर में देखो पड़ा अन्धेरा है।
लख के सूना काम क्रोध ने आन लगाया डेरा है ॥
इसे देखने एक बार आजाओ तो अन्तर्यामी।
फेर यहां रहना ना रहना है तव इच्छा पर स्वामी ॥ ५ ॥

नैनों तुमको मैंने अपना देह-गृह-हार बनाया है ॥
किसी चोर द्वारा तुमने ही मेरा मन चुरवाया है ॥
जाने दो मन गया यदि पर मनहर मुझे बताओ तो।
नैनों मुझको एक बार मेरा चित चोर दिखाओ तो ॥ ६ ॥

प्रियतम! तेरा चित्र देख मैं फूला नहीं समाता हूं।
तेरे श्याम वदन की छवि को लखते नहीं अघाता हूं ॥
तेरी मन मोहनी मूर्ति पे जब भी दृष्टि जमाता हूं।
अपना मन हाथों से अपने मन- हर जाते पाता हूं ॥ ७ ॥

जान पुष्प सम कोमल तुमको नित उपवन को जाताहूं।
करने को शृंगार तुम्हारा पुष्प बीन कर लाता हूं।
शीश मुकुट पुष्पों का, गल में पुष्प माल पहनाता हूं।
कानों में पुष्पों के कुण्डल पहिना तुम्हें सजाता हूं ॥ ८ ॥

इस प्रकार पुष्पों से जब तव मूर्ति सजा मैं पाता हूं।
इन नैनों में भरे नीर से श्याम तुम्हें न्हिलाता हूं ॥
तप्त श्वास की धूप दिखा विरहानल दीप जलाता हूं।
आओ आओ की ध्वनि का ही प्यारे शंख बजाता हूं ॥९ ॥

इसी तरह मन मोर श्याम नित तेरा ध्यान लगाता है।
नहीं दर्श पाने पर तेरा मन ये घबरा जाता है ॥
जैसे चातक स्वाती जल के हेत नित्य चिल्लाता है।
वैसे ही मन मोर नाथ तव दर्शन करना चाहता है ॥ १०

श्याम विरह अब सहा न जाता है दर्शन दिखला जाओ।
देखो कब से टेर रहा हूं प्यारे अबतो आजाओ।
मन चातक के गले नाथ अब दर्श-स्वाति- जल टपकाओ ॥
बिना दर्श व्याकुल हूं अबतो नाथ न ज्यादा तरसाओ ॥११

जैसे कोई छोटा पक्षी पिंजरे में तड़पाता है।
वैसे ही मम प्रान बिना तव दर्श नाथ अकुलाता है ॥
कुछ उपाय नहीं चले दुखी हो होय पछारें खाता है।
रखना होतो देना दर्शन नहीं प्राण ये जाता है ॥ १२ ॥

धन्य धन्य वो आखें हैं जो दर्शन तेरा पाती हैं।
अपने द्वारा हिय में तेरी छवि रखके मुंद जाती हैं ॥
वह अन्धा है जिसको तैने छवि निज नहीं दिखाई है।
निर्धन है वो जिसने तेरी दर्श-निधी नहीं पाई है ॥ १३॥

यही सोचता हूं हो तेरा अब किस का कहलाऊं मैं।
तेरे दर पे आके स्वामी अब किस के दर जाऊं मैं ॥
ठान लिया है अब तो मन में आसन यहीं जमाऊं मैं।
मिले शान्ति दिलको इस छवि से जब तव दर्शन पाऊं मैं॥

सिर पर मुकुट, मुकुट में सुन्दर भांति २ की मणियां हों।
गुंथी मुकुट में, केशों पर लटकी शुचि मोतिन लरियां हों ॥
श्यामल लोल कपोलों पे लटकें मुक्ता छवि पाते हों।
मकराकृत कुण्डल कानों में निज शोभा दिखलाते हों ॥१५

उस उन्नत द्युतिमय ललाट पर चन्दन छटा निराली हो ।
नीले कमल समान कपोलों पर कुछ हलकी लाली हो ॥
होठों की ललिमा मनोहर अद्भुत शोभा शाली हो ।
मुख पर हंसी, हंसी की आभा मनको हरने वाली हो॥ १६

चन्द्र समान, सांवले मुखने, अद्भुत कान्ति फैलाई हो ।
वक्षस्थल पे वनमाला बिच कौस्तुभ मणी सुहाई हो ॥
अति सुन्दर पुष्पों के गजरों से भर रही कलाई हो ।
उनके ही द्वारा अधरों पर मधुर बांसुरी आई हो ॥ १७ ॥

भृकुटी लख कर मनसिजका भी सुन्दर धनुष लजाता हो ।
आखों की उपमा को आते लाल कमल भय खाता हो ॥
बीच नासिका के सुन्दर एक श्वेत बुलाक सुहाता हो ॥
सुन्दरता लख चिबुक हाथ से मन भी निकला जाताहो ॥

केहरि सम सुन्दर कन्धों पर कुटिल केश कछु आते हों ।
बीच जिन्हों के, कुण्डल के शुचि मोती श्वेत सुहाते हों ॥
कुछ कुछ केश कपोलों पर भी निज शोभा दिखलाते हों ।
चन्द्र समान वदन की छवि लख कोट मनोज लजाते हों ॥ १९

लगे बांसुरी में कुछ सुन्दर पुष्प छटा दिखलाते हों ।
उसके छेदों पर निज कोमल अङ्गुली आप चलाते हों ॥
बजती हो बांसुरी नाम लेले वृष भानु किशोरी का ।
समा बंधा हो चारों दिश उस मधुर बांस की पोरीका ॥२०

कन्धे पर से भांति जनेऊ चीर गुलाबी लटका हो ।
कटि में बंधा हुवा शोभा अति पाता द्युतिमय पटका हो ॥
उसके नीचे धोती पीली अपनी छटा दिखाती हो ।
अपनी द्युति से विद्युत की भी अद्भुत द्युति लजाती हो २१

सब से नीचे श्याम-चरन-पंकज शोभा दिखलाते हों ।
जिनके नख पंकज ऊपर मोती का भास कराते हों ॥
कोटि पुष्प सर जिनकी कोमलता लखके सकुचाते हों ।
जिन से रस लेने को मुनि, गण जिन मन भ्रमरबनाते हों २२

इस छवि से दर्शन तेरा जो यह तव सेवक पायेगा ।
लखने को घनश्याम छवि मन मोर मेरा बन आयेगा ॥
दर्शन के मुखचन्द्र हेत ये मन चकोर बन जायेगा ।
चरन कमल पे बन कर भौंरा मन मेरा मडरायेगा ॥२३॥

एक बार भी जीवन धन जो दर्शन तेरा पाऊंगा ।
सच कहता हूं प्राणनाथ मैं फूला नहीं समाऊंगा ॥
नैन द्वार द्वारा तुमको मन मन्दिर में ले जाऊंगा ।
तेरे बिन सूना हृदयासन इस पे तुझे बिठाऊंगा ॥ २४ ॥

पद पदमों में प्रेम भाव के सुन्दर पुष्प चढाऊंगा ।
चन्दन-शान्ति श्याम उन्नत मस्तक पे तेरे लगाऊंगा ॥
दीया ध्यान की लोका है उससे ही आरती गाऊंगा ।
श्रद्धा की माला तेरे गल, कण्ठ बीच पहराऊंगा ॥ २५ ॥

होने से ऐसा, होगी फिर मुझे किसी की चाह नहीं ।
हो प्रसन्न या क्रोधित दुनिया होगी फिर परवाह नहीं ॥
तृप्त प्राण मन हो जायेगी जिस दिन दर्श-पिपासा यह ।
श्याम "मदन" की उसी दिवस होगी पूरी अभिलाषा यह ॥

---

# हितोपदेश

[ ले० श्री पूज्य भोले बाबा अनूपशहर ]

(१) जितना सन्तोष हमको सन्मान मिलने से होता है, उतना ही सन्तोष अपमान से भी जब तक न हो, तब तक हमको समझना चाहिये कि परमेश्वर में हमारी पूर्ण आस्था नहीं है क्योंकि ईश्वर में

पूर्ण विश्वास होजाना ही भक्तिकी परासीमा है।

(२) जो पुरुष अपना चित्त परमात्मा में लगाये रहता है और सर्वदा सत्य की रक्षा करता है, उस भक्त के द्वारा ही भगवत् अपनी महिमा प्रकट करते हैं और अपनी भक्ति और ज्ञानका प्रचारकरते हैं।

(३) आचार्य के थोड़ेसे दुराचार से भी प्रजाकी बड़ी हानिहोती है इसलिये उपदेशक को तनसे, मनसे, और वाणी से पवित्र रहना चाहिये। सदाचारी विना उपदेश के ही शिष्य आदि का हित कर सकता है।

(४) प्रभु के द्वार के सब भिक्षुक हैं! भिक्षुक का प्रभु पर कोई अधिकार नहीं है! फिर शिक्षक प्रभु से क्या मांगे? इतना ही कह सकता है कि आप की मर्जी हो, वह ही दीजिये! तात्पर्य यह है कि भगवत् की राजी में राजी रहना ही भगवत् की भक्ति है।

(५) बीती हुई बात का स्मरण करना उचित नहीं है, भविष्य की बाट भी देखना न चाहिये किन्तु जहां तक हो सके वर्तमान का सदुपयोग करना, इतना ही बस है।

(६) ईश्वर का भजन करो, सत्पुरुषों का अनुकरण करो, फिर तुमको बिचारे संसारियों से कोई पदार्थ मांगने की इच्छा ही न रहेगी।

(७) एक कम्बल, कष्ट साध्य भोजन, संसार का विस्मरण, धर्म का पालन और महा पुरुषों का अनुसरण ये सच्चे भक्त के लक्षण हैं।

(८ भगवद्दर्शन की प्रतिज्ञा करके परम सखा परमात्मा के आंगन में अड्डा लगाकर बैठना उसीके द्वार पर माथा टेकना और कितना भी कष्ट पड़े तो भी वहां से न खिसकना, यह जिज्ञासु के लक्षण हैं।

(९) कुछ पास न होने पर भी किसी से कुछ न मांगे, बिना मांगे कोई दे तो नहीं करने में दृढ़ रहे, वह सच्चा आस्तिक है।

(१०) जो ज्ञान ईश्वर को सब से श्रेष्ठ बतावे, अन्य सब पदार्थों को क्षुद्र दिखा कर, उनके मोह को त्यागने की प्रेरणा करे, पाप से भय और ईश्वर में आशा उत्पन्न करे, वह ही ज्ञान साधकों का श्रेय करने वाला है।

(११) सच्चा साधु अपने अलौकिक गुणों को छुपाता है, अपने अवगुणों को लोगोंके सामने प्रकट करता है।

# श्रीकृष्णाराधन से मनुष्य जन्म की सफलता

[ ले० श्री० आचार्य मदनमोहन जी गोस्वामी भागवत् रत्न वृन्दावन ]

संसार में मनुष्य जन्म प्राप्त करके जिसने श्रीकृष्ण भगवान् की आराधना नहीं की उसका जन्म लेना वृथा है। श्रीकृष्ण आराध्य हैं शास्त्र में इसको सिद्ध किया है। तापनी श्रुति में लिखा है-

सत्पुण्डरीक नयनं मेघाभं वैद्युतांबरम् ।
द्विभुजं मौन मुद्राढ्यं वनमालिनमीश्वरम् ॥
गोप गोपी गवावीतं सुरद्रुमतलाश्रयम् ।
दिव्यालंकारणोपेतं रत्न पंकज सेवितम् ॥
चिन्तयंचेतसा कृष्णं मुक्तो भवति संसृते ।

संसार से मुक्ति पानेका एक मात्र उपाय श्रीकृष्ण भगवान् की उपासना है। श्रीकृष्ण नाम की अन्यथा वृत्ति नहीं है, रूढी वृत्ति से श्री यशोदानन्दन कोही समझना चाहिये। श्रीचैतन्य चरितामृत में लिखा है:-

"प्रभु कहे कृष्णनामेर बहु अर्थ नामानि।
**श्यामसुन्दर यशोदानंदन**" एहमात्र जानि ॥

उक्त वाक्य श्री गौरांग देव का है। श्रीअक्रूर-जी ने अपने घर में आये हुए श्रीकृष्ण की स्तुति करते हुए कहा है।

कः पण्डितस्त्वदपरं शरणं समीयात्
भक्त प्रिया दृत गिरः सुहृदः कृतज्ञात् ॥
सर्वान् ददाति सुहृदो भजतोऽभिकामान् ।
आत्मानमप्युपचयापचयौ नमस्य ॥

हे भगवन्! आप सुहृद हैं निरुपाधि हैं, हित कारी हैं, महाकृतज्ञ हैं। भक्त ही आपकी प्रीति का विषय है। यहां तक की भक्त का वेष यदि छल से भी कोई धारण करके आता है उसको भी आप परमा गति देते हैं इसका प्रमाण लोक बालघ्नी राक्षसी पूतना है। विशेषतः आप सत्य संकल्प हैं। ऐसे सर्वगुण संपन्न आपको छोड़ कर कौन ऐसा पण्डित है जो दूसरे की शरण में जायगा। जो भजन कारी जनों की संपूर्ण अभिलाषाओं को पूर्ण करते हैं जो प्रीति युक्त सुहृद् को अपना स्वरूप तक दे देते हैं, जिनका उपचय और अपचय नहीं है, अर्थात् कोटि ब्रह्माण्डवर्ती कोटि संख्यक ब्रह्माओं के द्वारा अर्पित कोटि ब्रह्माण्डों की सम्पत्ति से भी जिनका कोई वैभव नहीं बढ़ता है। अपने सारूप्य को भी प्रदान करके जिनका किञ्चित् भी ह्रास नहीं होता, वही सर्वेश्वर श्रीकृष्ण ही जीव की परमाराध्य वस्तु है। श्री ब्रह्माजी ने भी कहा है।

येऽन्यर्पिता मथित्र नो नृगति प्रपन्ना।
ज्ञानन्वतत्त्व विषयं सहधर्म यत्र ॥
नाराधनं भगवतो वितरन्त्यमुष्य ।
सम्मोहिता विततया वत मायया ते ॥

जो लोग इस भारतवर्ष में मनुष्य जन्म लेकर भगवान् श्रीकृष्ण की आराधना नहीं करते हैं उनको समझना चाहिये कि, वे भगवान् की विस्तृत मायामें निश्चय मोहित होरहे हैं। उनके लियेहृदय में अत्यन्त खेद होता है। क्योंकि, मनुष्य जन्म अति दुर्लभ है। इस मनुष्य शरीरसे ही भगवद्धर्म प्राप्त करके निखिल रहस्य तत्वका ज्ञानोदय होता है। ऐसे मनुष्य शरीरको प्राप्त होकर जो श्रीकृष्ण की आराधना नहीं करता उसको हत भाग्य समझना चाहिये। उसका जन्म निरर्थक है। श्रीकृष्णाराधन से वञ्चित पुरुष के शरीर को शास्त्र कारों ने कैसा लिखा है:-

बिले बतोरुक्रम विक्रमान् ये न शृण्वतः कर्ण पुटे नरस्य।
जिह्वासती दार्दुरिकेव सूत न चोपगायत्युरु गाय गाथाः ॥

जिस पुरुष ने श्रीभगवान् का यश कानों से न सुना उसके कान बिल के समान हैं। जिसकी जिह्वाने हरि कीर्तन न किया वह जिह्वा असती है मेंढक के समान है।

यह मनुष्य जन्म बड़ी कठिनता से प्राप्तहोता

है। बड़े २ देवतागण भी इस मनुष्य जन्म के प्राप्त होने की अभिलाषा करते हैं।

'दुर्लभतरं मानुष्यं विबुधैरप्सितम् ॥
अशीतिश्चतुरश्चैव लक्षांस्तान् जीव जातिषु ।
भ्रमद्भिः पुरुषैः प्राप्य मानुष्यं जन्म पर्ययात् ॥

चौरासी लक्ष जीवों में भ्रमण करने के उपरान्त मनुष्य जन्म मिलता है। ऐसे मनुष्य जन्म को पाकर श्रीकृष्ण भगवान् के चरणों का आश्रय नहीं करता उसका जन्म विफल है इसलिए श्रीकृष्णाराधन से ही मनुष्य जन्म की सफलता है।

वृक्ष को जल सिंचन करने से जैसे शाखाएँ और उपशाखायें सब तृप्त हो जाती हैं, भोजन करने से समस्त इन्द्रियें तृप्त होती हैं इसी तरह एक मात्र भगवान् श्रीकृष्ण की आराधना करने से समस्त देवताओं की पूजा हो जाती है इसी से मनुष्य जन्म सफल होता है।

---

# हरिजन मरते समय भी आनन्दित रह सकते हैं

[ ले० वैद्य अमृतलाल सुन्दर जी पढ़ियार, बंबई ]

जगत् में जो अनेक प्रकार के दुःख हैं, उनमें सबसे बड़ा दुःख मृत्यु गिना ( समझा ) जाता है। कारण, मरते समय शरीर की स्थिति पराधीन होती है। मरते समय मन में घबराहट और जी बेचैन होता है इससे बहुत लोगों को मरते समय बहुत दुःख होता है। इतना ही नहीं परन्तु इस जगत् के साथ अपना जो सबन्ध है, सगे स्नेहियों के साथ जो सम्बन्ध है, मन में अपनी समझी हुई वस्तुओं के साथ जो संबन्ध है और अपने करने को बहुत से काम बाकी रहे हुये होते हैं, इन सब बातों को लेकर मनुष्य को मरना अच्छा नहीं लगता। इसीसे मरते समय बहुत से लोगों को बड़ा दुःख होता है। परन्तु जो सच्चे हरिजन होते हैं, जो सच्चे सन्त होते हैं, जो महान् भक्त होते हैं और जो वास्तविक स्थिति को समझने वाले होते हैं एवं जो परमानन्द में तल्लीन रहने वाले ज्ञानी महात्मा होते हैं-उनको मरने के समय भी दुःख नहीं होता। वरन् ऐसे प्रभुप्रेमियों को तो मरते समय उल्टा बहुत आनन्द आता है, कारण, वे समझते हैं कि:-

जो सुपुत्र विदेश में रह कर खूब कमाई करके समय आने पर अपने घर, अपने पिता के पास जाता है तो क्या वह दुःखी होता है ? नहीं ! नहीं ! उस समय तो उसको अतिशय आनन्द होता है और पिता के पास जल्दी से जल्दी कैसे पहुंचूं यही इच्छा होती है। कारण उसने परदेश में रह कर बहुत कमाई की है, उस कमाई से उसके हृदय में एक प्रकार का आत्मिक संतोष है और दूसरी ओर से पिता की प्रसन्नता का आनन्द एवं पिता के इनाम तथा आशीर्वाद का आनन्द उसके अन्तरमें उमड़ आता है। इसलिये परदेश से अपने घर अपने पिता

के पास जाते समय कमाऊ सुपुत्र के मनकी लहरें बहुत ही आनन्द दायक होती हैं और उसका आनन्द भी कोई अलौकिक ही होता है। उसी प्रकार जो भक्तगण इस संसार में अपने कर्तव्य का भली प्रकार पालन करके प्रभु की आज्ञा होने पर एवं प्रारब्ध के भोग पूरे होने पर जब ईश्वर के दर्बार में जाते हैं तब-मृत्यु काल में इस स्थिति को बदलते समय, इस संसार के दुःख मय जंजालों को सदा के लिये अन्तिम राम राम करते समय वे अतिशय आनन्द में होते हैं। उनका यह आनन्द कैसा होता है, क्या तुम्हें मालूम है ? इसके लिये सन्त कहते हैं:—

कोई छोटे गांव की रहने वाली गरीब मनुष्य की लड़की का किसी महान् धनवान् के साथ विवाह हो, उस समय लड़की को जैसा आनन्द हुआ करता है परमात्मा के साथ मन मिले हुये महान भक्तों को अपनी मृत्यु के समय तो उससे भी कहीं अधिक आनन्द होता है। अपने मृत्यु दिवस को वे अपने विवाह का दिन समझते हैं। अब हमारा प्रभु के साथ विवाह हो जायगा अर्थात प्रभु से हमारा मिलन हो जायगा; प्रभु के दर्बार में हम पहुंच जायंगे और उनके माननीय हो जायंगे, उनके अन्तःकरण में ऐसा दृढ़ विश्वास होता है। इसी से वे मरते समय उलटे अधिक आनन्द में होते हैं। जरा विचार कीजिये, छोटे से गांव की निर्धन लड़की के लिये कहां तो गोबर के कंडे ( छाना ) बीनना और कहां मोटर में बैठ कर वायु सेवन का आनंद प्राप्त करना ! कहां छोटी छोटी बालिकाओं के साथ पत्थर के टुकड़ों से खेलना और कहां बाई साहब ! बाई साहब ! कहलाते हुये हीरे मोती माणिक्य और मोहरों से खेलना ! कहां भाभी, काकी, मामी और अन्य सम्बन्धियों के ताने सुनना और चपत खाना और कहां करोड़पति स्वामी की अर्द्धांगिनि बन कर उनके घरकी स्वामिनी बन बैठना और सब कुछ अपने मनोनुकूल ही करना करवाना ! इसी प्रकार सच्चे भक्त भी ऐसा ही समझते हैं कि कहां तो इस जगत् की उपाधियां और कहां परमानन्द ! कहां व्यवहारिक प्रपञ्च, कहां ईश्वरीय शांति। कहां तो इस जगत् के तुच्छ और क्षणिक खेल कूद और आनन्द भोग कहां भगवान् के दरबार मोक्ष धाम के अविनाशी वैभव ! कहां इस देह के रोग और कहां आत्मा का अमरत्व ! कहां भिन्न भिन्न स्वभाव के लोगों को प्रसन्न रखना एवं उनकी प्रसन्नता प्राप्त करने के लिये मेहनत करना और कहां अनन्त ब्रह्माण्ड के नाथ जो दया के अपार सागर हैं, कृपा के भण्डार हैं और भक्त वत्सल, भक्त दुःख नाशक हैं उनकी कृपा पूर्वक उनके चरणों में रहना। इस प्रकार का आनन्द मृत्यु ही देने वाली है, ऐसा समझ कर सच्चे भक्त मरण काल में भी महाआनन्द में रहते हैं, और समझते हैं कि जिस दिनकी राह देखते थे, जिस दिनके आनेकी प्रार्थना करते थे और जिस दिन को धन्य भाग्य का दिवस समझते थे वह शुभ दिन आज आ पहुंचा है इससे और अधिक आनन्द की दूसरी बात क्या हो सकती है ? ऐसा समझ कर सच्चे हरिदास, सच्चे हरिजन अपनी मृत्यु के समय अतिशय आनन्द में मग्न रहते हैं।

भाइयो ! जिस समय किसी बड़े सेठ को आनन्द भोगने के लिये, वायु सेवन के लिये या स्वास्थ्य सुधार के लिये सुन्दर स्वास्थ्य कर स्थान में जाना पड़ता है तब वे पहिले से ही अपनी सब प्रकार की आवश्यक वस्तुओं को वहां भेज देते हैं।

जब वे वहां जाते हैं तब उन्हें सब प्रकार का प्रबन्ध तैयार मिलता है। इससे उनको किसी प्रकार का कष्ट उठाना नहीं पड़ता। वे वहां जाने पर बहुत प्रसन्न होते हैं। याद रखो इसी पूकार भक्त भी अपना सब सामान, सब भोज्य सामग्रियां पहिले से ही स्वर्गमें भेज देते हैं। उनके लिये वहां हरएक प्रकार की तैयारियां हुई हुई रहती हैं! कारण के जिनके घर मेहमान की तरह जाने वाले हैं वह सेठ कितना बड़ा है और उस का वैभव कितना विशाल है, यह तुम जानते हो? जो अनन्त ब्रह्माण्ड का स्वामी, अनन्त काल से समस्त ब्रह्माण्ड का पोषण करता है, जिसने सूर्य में महान् तेज की स्थापना की है, जिसने चन्द्रमा में शीतलता स्थापन की है. जिसने विविध ग्रहों को निश्चित गति प्रदान की है, जिसने विद्युत को परम प्रकाश दिया है, जो अमृत समान वर्षा करते हैं, जो सृष्टि की उत्पत्ति पालन करने वाले हैं उसके घर आज उसका भक्त मेहमान होता है अब उसकी मेहमानदारी कैसी होगी इसका जरा विचार तो कीजिये। इस प्रकार का आनन्द मृत्यु के समय मिलने वाला होता है, इससे मृत्यु काल में जिस समय सब सांसारिक लोग हाय! हाय!! करते हैं उस समय भक्त आनन्द के समुद्र में डूबे हुये होते हैं।

पाठको! भक्तों के लिये मौत क्या वस्तु है? क्या तुम इसे जानते हो? भक्तों के लिये मौत पारितोषिक पाने का दिन है। जिस प्रकार किसी इमानदार सेवक ने महान् सम्राट् की भली पूकार से सेवा की हो और इससे प्रसन्न होकर सम्राट् उसे बड़े से बड़ा पारितोषिक देने वाला हो उस दिन अपनी कद्र होने के लिये और सम्राट् की कृपा के लिये उस नौकर को जैसा आनन्द होता है उससे भी अधिक आनन्द सर्व शक्तिमान् परमात्मा की तरफ से पारितोषिक मिलने का समय होने पर-मृत्यु समय भक्त को होता है। कारण भक्त तो ऐसा समझते हैं कि हमने सम्पूर्ण जीवन भर हमारे नाथ की ही सेवा की है और दुःख भोगे हैं उसका बदला पाने का समय अब आया है। इससे अधिक सुन्दर कौनसा दिन होगा? वास्तव में इससे अधिक सुन्दर और मूल्यवान् दिन इस संसार में दूसरा नहीं है ऐसा समझ कर सच्चे भक्त अपनी मृत्यु के समय महान् आनन्द में निमग्न रहते हैं।

मरते समय सच्चे भक्तकी स्थिति कैसी होती है उसका सच्चा हाल जब हम जानते हैं तब हमारे जीवन में भी कुछ नवीन कान्ति आती है। इसलिये आज जब यह प्रसंग छिड़ गया है तो मृत्यु समय के आनन्द की थोड़ी और भी उपयोगी और प्रभाव शाली वार्ता सुनलो। इस विषय में सन्त कहते हैं किसी पक्षी को जबरदस्ती छोटे से पींजरे में डाल रखा हो, उसमें से छूटने के लिये वह तड़फता हो, उसी समय पींजरे का द्वार खुल जाय और वह नन्हा सा पक्षी जोर से उड़ जाय उस समय उसे जैसा आनन्द प्राप्त होता है उससे भी अधिक इस जगत् के पींजरे में से, माया के पींजरे में से, जगत् के जंजालों के पींजरे में से और व्यवहारिक रूढियों के पींजरे में से भक्तों का जीवात्मा जिस समय उड़ जाता है उस समय उनको होता है। कारण जो प्रभु में डूबे हुये भक्त होते हैं उनको इस संसार के सब व्यवहार एक पींजरे की तरह लगते हैं। इस पींजरे में उनका विशाल आत्मा नहीं समा सकता। इसमें से छूटने के लिये वे छटपटाते रहते हैं।

और किसी किसी समय तो उनको इसके लिये बहुत व्याकुलता हो जाती है। पींजरा तो पींजरा ही है। चाहे सोने का ही क्यों न हो। इस पींजरे में बहुत प्रकार की सुविधायें हों तब भी यह पींजरा ही है, नहीं, नहीं एक प्रकार का कैदखाना ही है। उसमें विशाल हृदय वाले जीव कैसे रह सकते हैं? कहां तो जगत् के बंधनों का पींजरा और कहां अखंड स्वतन्त्रता वाला मोक्षधाम। इसीसे भक्त पींजरे में से उड़ते समय अतिशय आनन्दित हों तो इसमें कुछ नवीनता नहीं है।

संक्षेप में बात यह है कि बहुत वर्षों तक काशी में अभ्यास करके विद्वान् हुआ ब्राह्मण जब लौट कर अपने घर जाता है तब उसको जो आनन्द प्राप्त होता है, युद्ध में पराक्रम दिखला कर शत्रुओं को जीत कर अपने घर लौटते हुये प्रसन्न वदन क्षत्रिय वीर को जो आनन्द प्राप्त होता है, और विदेश में जाकर प्रचुर धन सञ्चय कर मान बड़ाई सहित लौटते हुये वणिक् पुत्र को जो आनन्द प्राप्त होता है उससे भी अधिक आनन्द मरते समय भक्त को होता है। वे अपने कर्तव्य का पालन कर, अपने धर्म को निबाह कर और अपने हृदय में भगवदावेश भर कर मरते हैं इससे मरते समय भी वे महान् आनन्द में विभोर रहते हैं। यदि दुःख दायक मरण काल में भी सच्चा आनन्द प्राप्त करना हो तो प्रभु के सच्चे अटल निरभिमानी भक्त बनो। (गुजराती से)

## पावन प्रतिमा।

[ ले० श्रीमती सुमित्रादेवी ]

हृदय स्थल में बसी हुई है,
प्रेम मूर्ति प्रिय साकार।
किस ढांचे से ढलकी है यह,
सुन्दर है जिसका आकार ॥ १ ॥

सुन्दरता में अनुपम है यह,
है उसका वह तेज अपार।
स्निग्ध दृष्टि शीतल इतनी अति,
न होगी इतनी हिम जल की धार ॥ २ ॥

उसकी एक परछांही मात्र से,
चमक रहा प्रभाकर हो।
फिर तुलना की जावे किससे,
स्वयं लजाता दिनकर ही ॥ ३ ॥

उसकी प्रिय दृष्टि के सन्मुख,
लज्जित स्वयं सुधाकर है।
जो इतनी शीतल अमृत तर,
किरणों का जो आकर है ॥ ४ ॥

स्निग्ध दृष्टि जिस पर पड़ती,
वह आता स्वयं लजा कर है।
पूर्णानन्द मग्न हो जाता,
दर्श मनोहर पाकर है ॥ ५ ॥

रम्य स्वरूप सुधा कर वृष्टी,
शीतल उर को कर देती है।
परमानन्द मनोहर छवि की,
लहरों से भर देती है ॥ ६ ॥

कण कण में प्रति क्षण क्षण में,
नित नूतन सौन्दर्य अनूप।
अपलक लोचन लगा खड़ी हूं।
देख शान्तिमय तेज स्वरूप ॥ ७ ॥

देख २ उर हर्षित होता,
क्या होगी अब से पहचान।
मग्न देख कर मुझको केवल,
मुसका देती है अन जान ॥ ८ ॥

# हिंदी कवियों की भगवद्भक्ति

[ ले० श्री० ब्रह्म शास्त्री ]

भगवान् की सृष्टि में कवि जन अपने ढंग के अनोखे ही हैं। उनकी रचना निराली, भाव प्रदर्शन अलौकिक, होती हैं। वह अपनी रसीली एवं मनोहर बातों से सहृदयजन को बड़े भले मालुम होते हैं। कविता रूपी मोहिनी मंत्र से मुग्ध करके उपदेश देने में वह बड़े चतुर हैं।

मेरा विश्वास है, कि अन्य सहस्रों प्राणियों को साथ लेकर यह भक्त कवि जल्दी भगवान् के समीप पहुंचते हैं। यही नहीं उनकी कविता रूपी नौका माया जाल में फंसे हजारों दीन दुःखी भक्तों को भवसागर से पार उतारती है।

अतएव "भक्ति" के सहृदय पाठकों के समक्ष इन पुण्यात्मा भक्त कवियों की रसमयी एवं भाव पूर्ण पद्यावली रखते हुए आज मुझे हर्ष होता है।

अमर बेली बिन मूल की, प्रतिपालत है ताहि।
रहिमन ऐसे प्रभुहि तज, खोजत फिरिए काहि॥

जो भक्त वत्सल भगवान् बिना जड़वाली (अनाथ) 'अमर बेल को रक्षा करते हैं, ऐसे दीन-बन्धु प्रभु को छोड़ कर अब हम और किस संरक्षक की खोज करें। अर्थात् हमारे तो वही आनन्दकन्द श्रीकृष्णचंन्द्र ही सर्वस्व हैं।

सहृदय पाठक! समझ सकेंगे कि महा कवि रहीमने अपने आपको भगवान् के चरणों में कैसे अच्छे ढंग से सौंप दिया है।

अब रहीम मुश्किल परी, गाढ़े दोऊ काम।
सांचे से तो जग नहीं, झूठे मिले न राम॥

यह बड़ी कठिनाई आई, दोनों काम अति दुष्कर हैं। सत्य पथ पर चलने में जमाना (जगत्) साथ नहीं देता, और झूठे बनने से भगवान् नहीं मिलते।

कर्तव्य वश संसार में फंसे रहने वाले प्रभु के अनन्य भक्त की मनोदशा का कितना अच्छा दिग्दर्शन है।

अजगर करे न चाकरी पंछी करें न काम।
दास मलूका कह गये सबके दाता राम॥

अजगर किसी की नौकरी नहीं करता, इसी प्रकार पक्षियों ने भी पेट भरने के लिये कोई विशेष कार्य अपने हाथ में नहीं लिया। अर्थात् भगवान् ने प्राणियों को पैदा किया है। उन्हें स्वयं सबके भरण पोषण की चिन्ता है।

देखिये! महात्मा मलूक दासजी हर एक भक्त को भगवान् पर दृढ़ विश्वास रखने का कितना सुन्दर उदाहरण देते हैं।

एक बार एक तालाब में एक हाथी स्नान करके

स्वभाव के अनुसार सूंड से अपनी पीठ पर धूल डाल रहा था। वहां कविवर रहीम भी उपस्थित थे। उनको सम्बोधित करके किसी ने पूछा ? कहिये कविराज ! यह हाथी स्नान करके अपने ऊपर धूल क्यों डालता है ?

उत्तर में रहीम कवि ने उसी समय कहा—

धूरि धरत निज शीश पर कहु रहीम केहि काज।
जेहि रज मुनि पत्नी तरी, सो ढूंढत गजराज॥

यह हाथी स्नान द्वारा पवित्र होकर उस धूली को ढूंढता है कि जिस भगवान् की चरण धूलि से पत्थर की अहिल्या तर गई। यदि वही भगवान् की चरण रज मुझे भी मिले, तो हमारा भी बेड़ा पार हो जाय।

भगवान् के अनन्य भक्त महाकवि सूरदासजी भक्ति रसमें मग्न, ब्रज बिहारी मुरारी का मनही मन गुणानुवाद गाते हुए, तन बदन से बेसुध हो वृन्दावन की ओर जा रहे थे। कभी कभी पथिकों से मार्ग भी पूछ लेते और गोपाल गोपाल कहते गिरते पड़ते चलते थे। केवल अन्धे की लकड़ी ही उस समय सहायक थी।

भक्तवत्सल भगवान् से यह करुणामय दृश्य न देखा गया। शीघ्र ही पथिक बन कर वहां आगये और सूरदास जी का हाथ पकड़ कर कहा "चलो भाई कहां चलोगे, हम तुम्हें पहुंचा दें और ठीक मार्ग बतादें" इतना कह कर सूरदास जी का हाथ पकड़ कर वृन्दावन की तरफ चल दिये।

चलते चलते भगवान् के सुकोमल कर स्पर्श से भक्त सूरदास ताड़ गये, कि यह पथ प्रदर्शक कोई भक्त जन मन चोर हैं। यूं सोचते मिनटों में ही यथा स्थान पहुंच गये। भगवान् भी अवसर देख चुप चाप झटके से हाथ छुड़ा कर चलते बने।

उसी समय भक्त सूरदास के मुंह से सहसा यह शब्द निकल पड़ा—

बांह छुड़ाये जात हो, निर्बल जान के मोय।
हिरदे तें जब जाओगे, मरद बदौंगो तोय॥

निर्बल जानकर हाथ छुड़ा के जाते हो, लेकिन आप की वीरता तो तब मालूम होगी जब मेरे हृदय से निकल कर भाग सकोगे।

भक्त सूरदास जी के हृदय में कितनी दृढ़ता है। वह डंके की चोट कहते हैं कि संसार की कोई शक्ति हमारे हृदय से भगवान् को नहीं निकाल सक्ती। अर्थात् इस मायामय जगत् का कोई प्रलोभन उनके मनको चंचल नहीं कर सकता।

एकबार महात्मा तुलसीदासजी वृज भूमि वृन्दावन में पहुंचे। वहां द्वारकाधीश के मन्दिर में भगवान् के दर्शन के लिए गये परन्तु वहां पर तो बात ही और निकली।

महात्मा तुलसीदासजी तो धनुषबाण वाले, वीर भेष धारी के उपासक थे, परन्तु इन्हें मोर मुकुट एवं बंशी वाले दिखाई दिये। उसी समय हाथ जोड़ कर कहा—

कहा कहौं छवि आपकी, भले बने हो नाथ।
तुलसी मस्तक तब नवे, धनुष बाण लेउ हाथ॥

वाह रे ! बंशी वाले !! देखने में तो बहुत सुन्दर बने हो। लेकिन इस तुलसी का शिर यदि चरणों में झुकवाना चाहते हो, तो कृपा पूर्वक धनुष बाण हाथ में ले लीजिये।

अन्ततोगत्वा भगवान् को भी भक्त का दृढ निश्चय देख कर झुकना पड़ा और धनुष बाण लेकर दर्शन दिये।

# प्रेमा-भक्ति

[ले० श्री० अनन्तराम जी वकील कसूर ]

प्रिय पाठक ! सच पूछो तो प्रेमा भक्ति ऐसा विषय ही नहीं है कि जो लेख के पढ़ने मात्र से ही समझ में आसके, क्योंकि अन्यान्य विविध विषय तो केवल मस्तिष्क से ही निकलते हैं इसलिये मस्तिष्क से ही समझे जा सकते हैं परन्तु प्रेम एक ऐसा भाव है जो हृदय से प्रकट होता है। इस कारण हृदय में ही ठीक बैठ सकता है। अतः प्रेमा भक्ति के सब भावों को हृदयस्थ करके ग्रहण करें तब कुछ रस प्रतीत होगा, प्रेम और आनन्द एक ही वस्तु के प्रकाशक दो भाव हैं। जहां प्रेम का विकाश हो वहीं पर आनन्द की प्रतीति होती है और जहां आनंद भासता है वहीं प्रेम प्रकट होता है। परमात्मा को सत्, चित्त आनन्द स्वरूप माना है यह जीवभी उसका ही अंश है। अतः आनन्द स्वरूप है। यह जीवभी पांच कोषों में लिपटा हुआ है, जिनको अन्नमय, प्राणमय मनोमय, विज्ञानमय और आनंदमय कहा है, सब से बाहरी अन्नमय कोष है। जो जीव से दूर है इसी-लिये इसमें से आनन्द की झलक बड़ी धीमी प्रकाशित होती है ज्यूं ज्यूं हम अन्तर में जाते हैं त्यूं त्यूं ही आनंद का विकाश बढ़ता जायगा यहां तक कि जब आत्माके निकट पहुंचेंगे तब केवल आनन्दमय स्थान के भीतर ही प्रवेश हो जाएगा। इसका उदाहरण यूं समझो कि एक लैम्प की ज्योति के ऊपर चिमनी होती है उसके ऊपर एक ग्लोब लगा होता है उस पर कई लोग सबज़ कागज़ लगा देते हैं। इसको देखने से स्पष्ट प्रतीत होगा कि ज्योति का सब से निर्मल प्रकाश चिमनी में से निकलेगा उससे कम ग्लोब में से तथा कागज़ में से उससे भी थोड़ा। इसी प्रकार अन्नमय कोष में से जो आनन्द अथवा प्रेम का विकाश होता है वह बड़ा धुंधला होता है परन्तु इससे अंतरी परदे मनोमय कोष में प्रेम की झलक अधिक शुद्ध तथा निर्मल होती है। इसलिये हमें शारीरिक प्रेम का विचार छोड़ कर हार्दिक प्रेम को ध्यान में रखना उचित है। इससे भी आन्तरिक परदों अर्थात् विज्ञानमय और आनन्दमय कोषों में तो प्रेम की सीमा अथाह है परन्तु हम को अभी इन कोषों का ज्ञान नहीं है, कई लोग विज्ञानमय कोष को बुद्धि का स्थान कह देते हैं परन्तु यह ठीक नहीं क्योंकि बुद्धि तो मन की ही एक विचारिणी वृत्ति है। इसे ज्ञान तो कह सकते हैं परन्तु विज्ञान नहीं कह सकते क्योंकि यह तो विशेष ज्ञान होता है जो साधारण बुद्धिमानों में नहीं पाया जाता। यह ज्ञान मंत्र द्रष्टा महर्षियों तथा इल्हामी पैगंबरों में ही मिलता है। इसलिये जिनके आन्तरिक कपाट खुलकर विज्ञान का प्रत्यक्ष अनुभव नहीं हुआ उन्हें मनोमय कोष से ही काम लेना होगा और मनके भावों में ही प्रेम को ढूंढ निकालना होगा। जिस हृदय में प्रेम होगा वहां प्रीतम के वियोग में व्याकुलता की प्रतीति अवश्य होगी। उसकी याद ही कभी विस्म-रण न होगी यदि किसी समय भूल भी जावे तो वियोग के कारण चित्त घबराने लगेगा। प्रेम का यह बड़ा भारी लक्षण है। एक लक्षण यह भी है कि प्रेम अपने प्रीतम से सिवाय प्रीतम के और कोई

वस्तु लेना नहीं चाहता। बहुत लोग कदाचित् एकबार दिनभर में परमेश्वर का नाम तो लेते हैं परन्तु इसके बदले में बीसियों सांसारिक पदार्थ मांग लेते हैं यह बात प्रेम के प्रतिकूल है। प्रेम कोई बाज़री सौदा नहीं है प्रेम तो केवल प्रेम के ही लिये होना चाहिये॥

सांसारिक वस्तुओं यथा स्त्री, पुत्र, धन, पदार्थ माता, पिता, भ्राता, मित्र, आदिकों के साथ जो प्रेम होता है वह सब स्वार्थ युक्त है। इस प्रेम में निःस्वार्थता है, देहधारियों के प्रेम में से केवल गुरु शिष्य का प्रेम ही शुद्ध और समीचीन होता है! जैसे कहा है:-

पिता से माता सौ गुणा करती सुत को प्यार।
माता से हर सौ गुणा हर से गुरु सौ बार॥

प्राचीन गुरु शिष्यों का तो कहना ही क्या है अभी चार सदियों की बात है कि बंगाल में श्री गौरांग (चैतन्य) महाप्रभु के साथ उनके शिष्य और भक्तों ( अद्वैताचार्य, श्रीवास, हरिदास, मुकंद आदिकों] का अपूर्व प्रेम हुआ है। पंजाब में सिक्खों की गुरु प्रणाली में गुरु अमरदास जी ने अपने गुरु की असीम सेवा की है। प्रति दिन उषाकाल में उठ कर उल्टे पाओं चल गागर लेजाते और गुरुजी के स्नान के लिये व्यास नदी से जल लाया करते। एक दिन प्रातः काल वर्षा होने लगी। पास ही एक जुलाहे की खाड़ी थी अमरदास जी का पांव फिसल गया और वह धड़ाम से खाड़ी में गिर पड़े परन्तु यत्न करके गागर को सिर पर से गिरने नहीं दिया, गिरने की आवाज़ सुन कर जुलाहा बोला "कौन है? जुलाही ने कहा 'ऐसे समय में कि जब वर्षा हो रही हो और कौन हो सकता है, बेचारा अमरू होगा जो गुरु सेवा में तत्पर है'। यह बात गुरुजी के कानों तक भी पहुंची। तो उन्होंने कहा "कौन कहता है अमरू बेचारा? यह तो गुरु अमरदास होगा"। उन्होंने उसी समय शक्ति संचार की और उसे गुरु पदवी दे दी। ऐसे ही हज़रत बुल्हेशाह कसूर निवासी का प्रेम भी अपने गुरु शाह इनायत के साथ प्रसिद्ध है। एकबार गुरु ने नाराज़ होकर उस को अपने डेरे से निकाल दिया बुल्हेशाह कई दिन तक दर्शन के लिये तड़फता रहा। निदान उन्होंने अन्त में गुरु के दर्शनों का उपाय सोच ही निकाला कि प्रभात समय गुरु जी अंदर स्नान किया करते हैं जिस मोरी से वह पानी बाहिर निकलता है उसमें अपना सिर घुसेड़ कर पानी बंद करदूं। जब पानी अंदर इकट्ठा होने लगेगा तो गुरुजी अवश्य ही अपनी सोटी से मोरी को साफ करेंगे। इस प्रकार अपने प्रीतम की सोटी तो सिर से छूएगी जिससे उसे आनंद की प्रतीति होगी। उसने ऐसा ही किया परन्तु गुरु अंतर्यामी थे जब पानी रुक-गया तो उन्होंने एक सेवक से कहा "जाओ बाहर बुल्हे ने मोरी में सिर फंसाया है उसे खैंच कर बाहर निकाल दो"। उसने ऐसा ही किया, बुल्हेशाह रागियों की एक टोली से मिल गया। जिन्होंने गुरु जी के सामने गायन की चौकी दी उसमें बुल्हेशाह ने गाया और प्रेम में नृत्य भी किया उस समय यह काफी गाई थी—"तेरे इश्क नचाया कर थय्या थय्या" ऐसे गायन को सुन कर गुरुजी वजद में आगए और कहा "मांग जो मांगना है" बस बुल्हे ने हाथ फैला दिये और गुरु जी ने उसे छाती से लगा लिया और आंतरिक शक्ति संचार से फकीरी की दौलत प्रदान की यह कह कर "कि

बुल्लिया लईऊ पर नच्च के" फिर कह दिया कि जाओ गट्ठों ( पियाज ) को कतारों में लगा दो। जब बुल्ले ने एक ओर से गट्ठे उखाड़ कर दूसरी ओर लगाने आरंभ किये तब ही उसकी आंतरिक आंख खुलती गई तो उसने कहा-"बुल्लिया रब्बदा की पावना इधरों पट्टना ते उधर लावणा" इस प्रकार गुरु भक्ति से ही और भी बेशुम्मार फकीरों ने ऊंचा दर्जा पालिया। शास्त्रों में तो कहा है—

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुः गुरुर्देवो महेश्वरः।
गुरुरेव परंब्रह्म तस्मै श्रीगुरवे नमः॥

और सच्च पूछो तो गुरु का दर्जा ईश्वर से भी बड़ा है जैसे कहा है।

गुरु गोविंद दोनों खड़े किसके लागूं पाय।
बलिहारि गुरु आपने जिन गोविंद दिया बताय॥

गुरु साकार होते हैं उससे प्रेम करना सहज है परंतु निराकार अव्यक्त ब्रह्म से प्रेम करना कठिन ही नहीं वरंच असंभव हो है। शंका हो सकती है कि गुरु पर केवल श्रद्धा ही करलें प्रेम की क्या आवश्यकता है। इसका उत्तर यह है कि श्रद्धा के भाव में दूरी और भय बराबर बने रहते हैं। प्रेम में निकटता और अभय के भाव बन जाते हैं और गुरु के चित्त में सेवक के लिये अपनत्व के भाव उत्पन्न हो जाते हैं। तब ही तो गुरु दयाल होकर चेले को भगवान की प्रेमा भक्ति प्रदान करते हैं। यह प्रेमा भक्ति ही सब से अमूल्य पदार्थ है जो सिवाय सच्चे प्रेमी के और किसी को दिया नहीं जा सकता। जैसे दीपक से दीपक जलाया जाता है ऐसे ही प्रेमा भक्ति की ज्योति गुरु के हृदय से निकल कर शिष्य के हृदय रूपी दीपक को प्रकाशित कर देती है और वह ज्योति तब तक बराबर बनी रहती है जब इसको अभ्यास रूपी जल देते रहेंगे। (क्रमशः)

# भजन

सतगुरु है रंगरेज, चुनर मेरी रंग डारी॥ टेक॥
स्याही रंग छुड़ाय के रे दियो मजीठा रंग।
धोबे से छूटे नहीं रे दिन २ होत सुरंग॥ १॥
भाव के कुंड नेह के जल में प्रेम रंग दई बोर।
चसकी चास लगाय के रे खूब रंगी सक शोर॥ २॥
सतगुरु से चुनरी रंगी रे सतगुरु चतुर सुजान।
सब कुछ उन पर वार दूं रे तन मन धन औ प्रान॥ ३॥
कहै कबीर रंगरेज गुरु रे मुझ पर हुये दयाल।
सीतल चुनरी ओढ़ि के रे भई हौ मगन निहाल॥ ४॥

२

साधो यही घड़ी यह बेला॥ टेक॥
लाख खरच फिर हाथ न आवे मानुष जन्म सुहेला॥ १॥
ना कोई संगी ना कोई साथी जाता हंस अकेला॥ २॥
क्यों सोया उठ जाग सवेरे काल मारेंदा सेला॥ ३॥
कहत कबीर गुर गुण गावो झूंठा है सब मेला॥ ४॥

३

अवधू भूले को घर लावै, सो जन हमको भावै॥ टेक॥
घर में योग भोग घर ही में घर तजि बन नहिं जावै।
बन के गये कल्पना उपजै तब धौं कहां समावै॥ १॥
घर में जुक्ति मुक्ति घर ही में जो गुरु अलख लखावै।
सहज सुन्न में रहै समाना सहज समाधि लगावै॥ २॥
उनमुनि रहै ब्रह्म को चीन्हें परम तत्त को ध्यावै।
सुरत निरत से मेला करिके अनहद नाद बजावै॥ ३॥
घर में बसत वस्तु भी घर है घर ही वस्तु मिलावै।
कहै कबीर सुनो हो अवधू ज्यों का त्यों ठहरावै॥ ४॥

४

करो जतन सखि साँई मिलन की ॥ टेक ॥

गुड़िया गुड़वा सूप सुपलिया ।
तजि के बुधि लरिकैयाँ खेलन की ॥ १ ॥
देवता पित्तर भुइयाँ भवानी ।
यह मार्ग चौरासी चलन की ॥ २ ॥
ऊँचा महल अजब रंग बंगला ।
साँई की सेज लगी फूलन की ॥ ३ ॥
तन मन धन सब अर्पन करि वहाँ ।
सुरत सम्हार पर्‌ु पइयाँ सजन की ॥ ४ ॥
कहैं कबीर निर्भय होय हंसा ।
कुंजी बता थो ताला खुलन की ॥ ५ ॥

५

गुरु मिले अगम के बासी ॥

उनके चरण कमल चित दीजे, सतगुरु मिले अविनाशी ॥
उनकी सीत प्रसादी लीजे, छुटि जाय चौरासी ॥
अमृत बून्द झरै घट भीतर, साध सन्त जन लासी ॥
धरमदास विनवै कर जोरी, सार सब्द मन बासी ॥

६

नैन दरस बिन मरत पियासा ॥

तुमहि छांडि भजूं नहि औरे, नाहि दूसरी आसा ॥
आठों पहर रहूं कर जोरी करि लेहु अपना दासा ॥
निस बासर रहूं लव लीना बिन देखे नहि बिस्वासा ॥
धरमदास विनवै कर जोरी धो निज लोक निवासा ॥

७

गुरु पैयां लागूं नाम लो लखा दीजो रे ॥

जनम २ का सोया मनुवां सब्दन मार जगा दीजो रे ॥
घट अन्धियार नैन नहिं सूझै ज्ञान का [illegible] जगादीजोरे ॥
विष की लहर उठत घट अन्तर अमृत बून्द चुवादीजोरे ॥
गहरी नदिया अगम बहे धुरवा खेय के पार लगादीजोरे ॥

८

साहिब डूबत नाव अब मोरी ॥

काम क्रोध की लहर उठत है मोह पवन झकझोरी ॥
लोभ मोरे हिरदे घुमरत है सागर वार न पारी ॥
कपट को भंवर परत है बहुतै या में बेड़ा अटको ॥
फांसी काल लिये है द्वारे आया सरन तुम्हारी ॥
धरमदास पर दाया कीन्हो काटि फन्द जिव तारी ॥
कहे कबीर सुनो हो धर्मन सतगुरु सरन उबारी ॥

९

राम सुमिर राम सुमिर एहि तेरो काज है ॥

माया को संग त्याग हरि जू की सरन लाग ॥
जगत सुख मान मिथ्या झूठो सब साज है ॥
सुपने ज्यों धन पिछान काहे पर करत मान ॥
बारू की भीत जैसे बसुधा को राज है ॥
नानक जन कहत बात बिनसि जै हैं तेरो गात ।
छिन २ करि गयो काल्ह तैसे जात जात है ॥

REGD. No. L. 2077

# भक्ति प्रेस में मिलने वाली पुस्तकें।

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| १. | भगवत्गीता संस्कृत तथा भाषा टीका सहित | | मूल्य | ।=) |
| २. | सारसंग्रह | ... ... | ,, | ≡) |
| ३. | शब्दसंग्रह | ... ... | ,, | -)॥ |
| ४. | भगवत् गीता दशम अध्याय पर्यन्त | ... | ,, | ।-) |
| ५. | अष्टोत्तरशतमन्त्रमाला | ... ... | ,, | -)। |
| ६. | वेदोपनिषत् | ... ... | ,, | ।-) |
| ७ | ज्ञानधर्मोपदेश | ... ... | ,, | -)॥। |
| ८. | भाषा फक्किका प्रकाश | ... ... | ,, | ॥) |
| ९ | भक्ति योग संग्रह | ... ... | ,, | =)॥ |
| १०. | शब्द संग्रह गुटका | ... ... | ,, | ।) |
| ११. | शब्द सदाचार संग्रह | ... ... | ,, | -)। |

मिलने का पता:—

**श्री भगवद्भक्ति आश्रम, रेवाड़ी।**

केवल टाइटिल पेज महारथी प्रेस, दिल्ली में छपा।